हिन्दी पद्य पराग

रणधीर उपाध्याय

मैकमिलन

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182591
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 U65H Accession No. G.H. 3044

Author उपाध्याय, रघुवीर

Title हिन्दी पद्यपराग 1958

This book should be returned on or before the date last marked below.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 U65H Accession No. G.H.3044

Author उपाध्याय, रणधीर

Title हिन्दी पद्यपराग १९५८

This book should be returned on or before the date last marked below.

MACMILLAN AND COMPANY LIMITED
LONDON BOMBAY CALCUTTA MADRAS MELBOURNE
THE MACMILLAN COMPANY OF CANADA LIMITED
TORONTO
ST. MARTIN'S PRESS INC.
NEW YORK

Copyright © by Randhir Upadhyaya. 1958

MADE AND PRINTED IN INDIA BY BRUCE PAGE AT THE
I. S. S. D. PRESS, 95 B, CHITTARANJAN AVENUE, CALCUTTA.

प्रस्तावना

गत नौ-दस वर्षों मे कॉलेज में गुजराती विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ाते समय अनेकानेक पद्य-संग्रहों से परिचित होने के अवसर आते रहे हैं। उपलब्ध सभी संग्रह हिन्दी भाषा-भाषी छात्रों की आवश्यकता-पूर्ति के हेतु प्रकाशित किये गये हैं; पर अहिन्दी भाषा-भाषी विद्यार्थियों के उपयुक्त उनमें से एक भी नहीं जँचा। मन में यह धारणा दृढ़ हो गई कि हमें तो प्राप्त संग्रहों से नितान्त भिन्न प्रकार की पाठ्य पुस्तक की आवश्यकता है। उसे तैयार करना अनिवार्य है। समय-समय पर विद्यार्थीगण तथा प्रकाशक भी इसके लिए मुझपर दबाव डालते रहे। उसी के परिणाम-स्वरूप यह संकलन—"हिन्दी पद्यपराग"—प्रकाश में आया है।

इस संग्रह में हिन्दी काव्य-साहित्य के सभी प्राचीन एवम् आधुनिक प्रतिनिधि कवियों की उत्कृष्ट कविताएँ संग्रहीत है। रचनाओं के चयन में भाषा की सरलता, विषय की विविधता और छन्दों की विभिन्नता का पूरा ध्यान रखा गया है। ब्रजभाषा एवम् अवधी अपरिचित कठिन पदों का इसमें समावेश नहीं किया गया है। साथ ही कविताओं के चयन में आरम्भ से अन्त तक यह तो दृष्टि-समक्ष सदा ही रहा है कि इस संग्रह के अध्ययन द्वारा हमारी नई तरुण पीढ़ी व्यापक राष्ट्रीय भावना, सात्विक देश-प्रेम तथा मानवता के उच्च आदर्शों से अपने को विभूषित करने की सद्प्रेरणा प्राप्त करे।

संग्रह की उपयोगिता बढ़ाने के लिए प्रत्येक कवि का संक्षिप्त परिचय, उसकी प्रमुख रचनाओं की नामावली तथा अभ्यासार्थ प्रश्न दे दिये गये हैं। संग्रह के अन्त में कठिन शब्दों के सरल अर्थ भी दिये गये हैं, ताकि देहाती छात्र सरलता से काव्यानंद पा सकें। आशा है, विद्यार्थीगण इस संकलन का स्वागत करेंगे।

जिन कवियों और प्रकाशकों ने अपनी रचनाएँ इसमें सम्मिलित करने की अनुमति प्रदान की है, हम उनके हृदय से आभारी हैं। अस्तु!!

अहमदाबाद — **रणधीर उपाध्याय**

१५-५-५८

अनुक्रमणिका

१	कबीर	७
२	सूरदास	१०
३	तुलसीदास	१३
४	मीराबाई	१७
५	रहीम	२०
६	बिहारी	२२
७	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	२४
८	मैथिलीशरण गुप्त	२९
९	रामनरेश त्रिपाठी	३५
१०	जयशंकर 'प्रसाद'	४०
११	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	४५
१२	सुमित्रानंदन पंत	४८
१३	महादेवी वर्मा	५७
१४	सुभद्राकुमारी चौहान	६२
१५	सियारामशरण गुप्त	७०
१६	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	७४
१७	रामकुमार वर्मा	८०
१८	हरिवंशराय 'बच्चन'	८४
१९	रामधारी सिंह 'दिनकर'	८९
२०	भगवतीचरण वर्मा	९३
२१	उदयशंकर भट्ट	९७
२२	रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'	१०५
२३	नरेन्द्र शर्मा	१०८
२४	स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय'	११३
२५	शिवमंगलसिंह 'सुमन'	११६
२६	सोहनलाल द्विवेदी	१२०
	कठिन शब्दार्थ	१२३

कबीर

संत-कवियों में अग्रगण्य कबीरदास का जन्म-वृतान्त अधिकतर दन्तकथाओ पर आधारित है। कहा जाता है कि इनका जन्म बनारस में एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, जिसे महात्मा रामानंद ने भूल मे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था। वह विधवा लोकलाज के डर से इन्हें लहरतारा तालाब के पास छोड़ आई। भाग्यवश नीरू नामक एक जुलाहा अपनी पत्नी नीमा के साथ उस मार्ग से गुजरा। वह बालक को उठाकर घर ले गया और उसका पालन-पोषण किया। यही बालक आगे जाकर संत कबीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनका जन्म संवत् १४५५ और मृत्यु संवत् १५७५ में माना जाता है।

कबीर अपने को रामानन्द का शिष्य मानते थे। कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने शेख तकी से भी दीक्षा ली थी। कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और रूढ़ियों एवम् अंधविश्वासों के बड़े विरोधी थे। इन्होंने जाति-पाँति, ऊँच-नीच, मूर्ति-पूजा, माला-तिलक, रोजा-नमाज़ आदि की कटु आलोचना की है। इनका जीवन अत्यंत सरल और सदाचार पूर्ण था। ये परिश्रम करके अपना जीवन-निर्वाह करते थे। कबीर अनपढ़ थे। इन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। इनकी मृत्यु के बाद इनकी वाणी संग्रहीत की गई जो 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। कबीर के पदों और साखियों की भाषा में अनेक बोलियों का मिश्रण पाया जाता है जिसे 'सधुक्कड़ी भाषा' कह सकते हैं। कबीर की वाणी में स्वाभाविकता, सच्चाई और सादगी है। कबीर वास्तव में हमारे देश के महान् सन्त एवम् समाज सुधारक थे।

पद

(१)

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँटे की बाड़ी उलझ पुलझ मर जाना है॥
यह संसार झाड़ औ' झाँखर आग लगै बर जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है॥

(२)

करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वशिष्ठ-से पंडित ज्ञानी सोधि के लगन धरी।
सीता हरन, मरन दसरथ को, बन में विपति परी॥
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि, कहँ वह मिरग चरी।
सीता को हरि लै गो रावन सुबरन लंक जरी॥
नीच हाथ हरिचंद्र बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग गिरगिट जोनि परी॥
पांडव जिनके आपु सारथी तिन पर विपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी॥
राहु केतु और भानु चन्द्रमा विधि संयोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी होके रही॥

(३)

पानी बिच मीन पियासी।
मोहिं सुनि-सुनि आवत हाँसी॥

आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी।
घर में बसत धरी नहिं सूझै, बाहर खोजत जासी॥
मृग की नाभि माँहिं कसतूरी, बन बन फिरत उदासी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज मिलै अविनासी॥

साखी

माली आवत देखि कै, कलियाँ करीं पुकार।
फूली फूली चुनि लिये, कालि हमारी बार॥१॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेमगली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥२॥
प्रेम छिपाया ना छिपे, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, नयन देत हैं रोय॥३॥
जाति न पूछौ साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ी रहन दो म्यान॥४॥
पाहन पूजै हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार।
तातें ये चाकी भली, पीस खाय संसार॥५॥
काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥६॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥७॥
साँझ पड़े दिन बीतवै, चकवी दीन्हीं रोय।
चल चकवा वा देस को, जहाँ रैन ना होय॥८॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। कबीर की विचारधारा स्पष्ट कीजिए।
२। कबीर के काव्य की विशेषताएँ बताइए।

सूरदास

भक्तिकाल की सगुणधारा के कृष्ण-भक्त कवियों में सूरदास का स्थान अद्वितीय है। इनके जीवन-वृत्तांत के विषय में बहुत कम ज्ञात है। कहते हैं कि इनका जन्म संवत् १५४० में और मृत्यु संवत् १६२० में हुई थी। सूरदासजी अंधे थे। कुछ लोग इनका जन्मान्ध होना सिद्ध करते हैं और कुछ इनको जन्मान्ध न मान युवावस्था में अन्धा हुआ मानते हैं।

सूरदासजी के लिखे १६ ग्रन्थ कहे जाते हैं। पर तीन ग्रंथों की प्रामाणिकता सिद्ध हुई है। उनमें "सूर सागर" अत्यंत प्रसिद्ध है। सूर की भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है। सूर ने तीन प्रकार के पद लिखे है—कृष्ण की बाल-लीला, गोपियों से सम्बन्धित भ्रमर-गीत और विनय के पद। सूरदास मुख्य रूप से वात्सल्य और श्रृंगार रस के कवि हैं। बाल लीलाओं के वर्णन में सूरदास का कोई दूसरा कवि समता नहीं कर सकता।

कहते हैं कि गोवर्द्धन पर श्रीनाथजी का मंदिर बन जाने के बाद एक बार वैष्णवाचार्य श्री वल्लभाचार्य गऊघाट पर उतरे। सूरदास आपके दर्शनार्थ पधारे और अपना बनाया हुआ एक पद गाकर सुनाया। आचार्य वल्लभाचार्य ने इन्हें वैष्णव धर्म की दीक्षा देकर श्रीमद् भागवत की कथाओं को पदों में लिखने का आदेश दिया। इस प्रकार सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य हुए और आजीवन कृष्णभक्ति के पद गाते रहे। वास्तव में सूर कृष्णभक्ति शाखा के कवियों में सर्वश्रेष्ठ है।

प्रमुख रचनाएँ:—सूर सागर, साहित्य लहरी, सूर-सारावली।

पद

(१)

जागिए ब्रजराज कुँअर, कमल कुसुम फूले।
कुमुद-वृन्द सकुचत भये, भृंगलता भूले।।
तमचुर खग रौर सुनहु, बोलत बनराई।
राँभति गौ खिरकन में, बछरा हित धाई।।
बिधु मलीन रवि प्रकास, गावत नर-नारी।
'सूर' स्याम प्रात उठौ, अंबुज करधारी।।

(२)

जग में जीवत ही को नातो।
मन बिछुरे तनु छार होइगो, कोउ न बात पुछातो।।
मैं मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच सुहातो।
विषय असवत रहत निसि बासर, सुख सीरो दुख तातो।।
साँच झूठ करि माया जोरी, आपुन रूखो खातो।
'सूरदास' कछु थिर नहिं रहई, जो आयो सो जातो।।

(३)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै।।
कमल-नैन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै।
परम गंग को छाँडि पियासो, दुरमति कूप खनावै।।
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यो, क्यों करील फल खावै।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै।।

(४)

मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो ।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो ।।
चार पहर वंसीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो ।
मैं बालक बहियन को छोटो छीको केहि विधि पायो ।।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो ।
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो ।।
जिय तेरे कछु भेद उपजै है जानि परायो जायो ।
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो ।
'सूरदास' तब बिहँसि जसोदा लै उर कंठ लगायो ।।

(५)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ ।
प्रीति पतङ्ग करी दीपक सौं, आयै देह दह्यौ ।।
अलि-सुत प्रीति करी जल-सुत सों, संपुट माँझ गह्यौ ।
सारंग प्रीति जो करी नाद सों, सनमुख बान सह्यौ ।।
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछु कह्यौ ।
'सूरदास' प्रभु विनु दुख-पावतिं नैननि नीर बह्यौ ।।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। सूरदास की भक्ति-भावना को आप अपने शब्दों में लिखिए ।
२। 'मैया मेरी, मैं नहि माखन खायो'—इस पद की विशेषताएँ लिखिए ।

तुलसीदास

प्रातः स्मरणीय गोस्वामीजी का जन्म उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के राजापुर नामक गाँव में संवत् १५८९ के आसपास माना जाता है। इनकी मृत्यु संवत् १६८० में हुई। इनके दीक्षा-गुरु बाबा नरहरिदास और कविता-गुरु शेष सनातन थे। कहा जाता है कि इन्हें विरक्त बनाने-वाली स्वयम् इनकी पत्नी रत्नावली ही थीं जिन्होंने इन्हें रामभक्ति की ओर मोड़ा। विरक्त होकर गोस्वामीजी तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़े। सारे भारत का परिभ्रमण कर अन्त में काशी में निवास किया जहाँ 'राम-चरित मानस' की समाप्ति हुई।

तुलसीदासजी भगवान राम के अनन्य भक्त थे। राम-भक्ति से ही प्रेरित और प्रभावित होकर इन्होंने 'मानस' की सृष्टि की। गोस्वामीजी जैसे उच्च कोटि के संत थे वैसे ही उच्च कोटि के प्रतिभा-संपन्न कवि भी थे। ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। दोनों भाषाओं में इन्होंने उच्च कोटि की रचनायें की हैं। इनके लगभग बारह ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं जिनमें रामचरित मानस सर्वश्रेष्ठ है। तुलसीदासजी संस्कृत भाषा के भी प्रकांड पंडित थे। अरबी-फारसी से वे अपरिचित नहीं थे। गोस्वामीजी वास्तव में भारतीय जनता के प्रतिनिधि कवि हैं। ये विश्व के श्रेष्ठ कवियों में से एक माने जा सकते हैं। संभवतः हिन्दी का अन्य कोई कवि इतना लोकप्रिय नहीं हुआ जितने महाकवि तुलसीदासजी हुए। इनका रामचरित मानस महलों से झोंपडियों तक अबाध गति से पहुँचा है। वस्तुतः गोस्वामीजी हमारे लिए वंदनीय हैं।

प्रमुख रचनाएँ :—रामचरित मानस, विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, बरवै रामायण आदि।

पद

(१)

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी॥
नाथ! तू अनाथ को अनाथ कौन मोसों।
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसों॥
ब्रह्म तू हौं जीव, तूही ठाकुर हौं चेरो।
तात-मात गुरु-सखा तू सब विधि हितु मेरो॥
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपाल चरन सरन पावै॥

(२)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा ते संत स्वभाव गहौंगो॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू को कछू न चहौंगो।
परहित-निरत-निरंतर, मन-क्रम-बचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम शीतल मन, परगुन नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख सम-बुद्धि सहौंगो।
'तुलसिदास' प्रभु यहि पथि रहि, अविचल हरि भगति लहौंगो॥

(३)

मन पछितै है अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु करम बचन अरुहीते॥

सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते ।
हम हम करि धनधाम सँवारे अन्त चले उठि रीते ।।
सुत बनितादि जानि स्वारथरत न करू नेह सबहीते ।
अन्तहुँ तोहिं तजैंगे पामर तू न तजै अबहीते ।।
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जीते ।
बुझै न काम अगिनि 'तुलसी' कहु विषय भोग बहु घीते ।।

(४)

ऐसो को उदार जग माँही ।
बिनु सेवा जो द्रवत दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ।।
जो गति योग विराग यतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी ।
सो गति दई गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ।।
जो सम्पत्ति दस-सीस अरपि करि रावण सिव पहँ लीन्हीं ।
सो सम्पदा विभीषण कहँ अति सकुच सहित प्रभु दीन्हीं ।।
'तुलसिदास' सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तो भजु राम काम सब पूरन करें कृपानिधि तेरो ।।

दोहे

तुलसी साथी विपत के, विद्या विनय विवेक ।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम भरोसो एक ।।१।।
राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ।।२।।
सात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक संग ।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ।।३।।

आवत ही हर्षे नहीं, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइए, कंचन बरसे मेह ॥४॥
एक भरोसो, एक बल, एस आस विस्वास।
स्वाति-सलिल रघुनाथ-जस, चातक तुलसीदास ॥५॥
जड़-चेतन गुन-दोसमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ॥६॥
सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनै नहिं काहि।
तुलसी यह मत संत को, बोले समता माहि ॥७॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। तुलसी की राम-भक्ति पर प्रकाश डालिए।
२। "तुलसी के दोहे उपदेशात्मक हैं।"—सिद्ध कीजिए।

मीराबाई

प्रेम-पगी मीराबाई का जन्म संवत् १५७३ में मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह के यहाँ राजस्थान के चौकड़ी नामक एक गाँव में हुआ था। इनका विवाह चितौड़ के महाराणा साँगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। ये बचपन से ही कृष्ण-भक्ति में लीन रहा करती थीं। विवाह के कुछ वर्षों बाद ये विधवा हो गईं। ये प्रायः मंदिरों में जाकर संतों के बीच बैठतीं, श्रीकृष्ण भगवान की मूर्ति के सामने गातीं और नाचतीं। यह आचरण इनके ससुरालवालों को पसंद नहीं था। भोजराज ने इन्हें मरवाने के लिए ज़हर भेजा, साँप भेजा; परन्तु मीराबाई का बाल बाँका नहीं हुआ। बाद में घर छोड़कर ये कृष्ण की प्रेम-दीवानी बनकर वृन्दावन और मथुरा चली गईं। वहाँ से वे सौराष्ट्र की द्वारिका नगरी में पहुँचीं। वहीं संवत् १६०३ में सदा के लिए अमरलोक की निवासिनी बनीं।

मीरा की साधना मधुर-रस से ओतपोत है। ये कृष्ण को अपना पति-प्रियतम मानती थीं। उन्हीं की भक्ति में लवलीन होकर मीरा ने पद गाये। मीरा के गीतों में हृदय की झंकार है, आत्मा की पुकार है, प्रेम के दीवाने का दर्द है। मीरा के पद वास्तव में बहुत ही मार्मिक हैं। मीरा के पद ब्रजभाषा, राजस्थानी और गुजराती में मिलते हैं। मीरा के सभी पद सूर के पदों की भाँति गेय हैं।

प्रमुख रचनाएँ:—मीराँ बृहद् पद संग्रह—सं० पद्मावती 'शबनम',
मीराबाई की पदावली—सं० परशुराम चतुर्वेदी।

पद

(१)

हे री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाणै कोय ।।टेक।।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस बिध सोना होय ।
गगन-मंडल पै सेज पिया की, किस बिध मिलना होय ।।१।।
घायल की गत घायल जानै, की जिन लाई होय ।
जौहरी की गत जौहरी जानै, की जिन जौहर होय ।।२।।
दरद की मारी बन-बन डोलूँ बैद मिला नहिं कोय ।
मीरा की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सँवरिया होय ।।३।।

(२)

सुनी मैं हरि आवन की आवाज ।।टेक।।
महल चढ़ी, चढ़ि जोऊँ मोरी सजनी, कब आवे महाराज ।।१।।
दादुर-मोर-पपीहा बोले, कोइल मधुरे साज ।।२।।
उमग्यो इन्द्र चहूँ दिस बरसे, दामिन छोड़ी लाज ।।३।।
धरती रूप नवा-नवा धरिया, इन्द्र मिलन के काज ।।४।।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, बेग मिलो महाराज ।।५।।

(३)

म्हाने चाकर राखोजी, गिरिधारी लला चाकर राखोजी ।।टेक।।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ ।
बृन्दाबन की कुंज गलिन में, गोविंद लीला गासूँ ।।१।।
चाकरी में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची ।
भाव-भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी ।।२।।

मोर मुकुट पीताम्वर सोहे, गले बैजन्ती-माला ।
बृन्दाबन में धेनु चरावै, मोहन मुरलीवाला ॥३॥
ऊँचे-ऊँचे महल बनाऊँ, बिच-बिच राखूँ बारी ।
साँवरिया के दरसन पाऊँ, पहिर कुसुम्भी सारी ॥४॥
जोगी आया जोग करनेकूँ, तप करने सन्यासी ।
हरी भजन कूँ साधू आये, बृन्दाबन के बासी ॥५॥
मीरा के प्रभु गहिर गंभीराँ, हृदे धरो जी धीरा ।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हों, जमुनाजी के तीरा ॥६॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

मीराबाई की कृष्ण-भक्ति पर टिप्पणी लिखिए ।

रहीम

रहीम का पूरा नाम अबदुर्ररहीम खानखाना था। ये अकबर बादशाह के रक्षक, मुग़ल सरदार बैरम खाँ के सुपुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६१० में और देहान्त संवत् १६८३ में हुआ। रहीम जब चार ही वर्ष के थे तभी बैरम खाँ की हत्या हो गई। रहीम अकबर की देखरेख में पले, बढ़े। अपनी प्रतिभा के कारण ये अकबर के सेनापति बने। प्रसिद्ध नवरत्नों में से ये एक थे। इनकी चारों ओर बड़ी इज्ज़त थी।

रहीम बड़े उदार, दानी और वीर थे। इन्हें संसार का बड़ा गहरा अनुभव था। इनके दोहों से मानव-प्रकृति और सांसारिक समस्याओं का अच्छा ज्ञान होता है। इनकी भाषा सरल और सरस है। यद्यपि ये संस्कृत, अरबी और फारसी के अच्छे विद्वान थे, पर इनके दोहों में उस विद्वत्ता की जटिलता नज़र नहीं आती।

प्रमुख रचनाएँ :—रहीम दोहावली, बरवै नायिका-भेद।

दोहे

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सुचहिं सुजान ॥१॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करे तरवारि ॥२॥
ये रहीम घर घर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारौ यारी छोड़ि दो, अब रहीम वे नाहिं ॥३॥
कहु रहीम कैसे निभै, वेर केरु को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥४॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष ब्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ।।५।।
यह रहीम निज संग ले, जनमत जगत न कोय ।
बैर, प्रीति, अभ्यास, यश, होत होत ही होय ।।६।।
धनि-रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ।।७।।
माँगे घटत रहीम पद, कितो करो बढ़ि काम ।
तीन डेग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ।।८।।
रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देइ ।।९।।
रहिमन लाखभरी करौ, अगुनी अगुन न जाय ।
राग सुनत पयहू पियत, साँप सहज धरि खाय ।।१०।।
शीत हरत तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक ।
रहिमन तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक ।।११।।
रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखौ गोय ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय ।।१२।।
रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय ।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ।।१३।।
यों रहीम सुख होत है, उपकारी के संग ।
बाँटनवारे के लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ।।१४।।

अभ्यासार्थ प्रश्न

मानव जीवन को सुन्दर और सफल बनाने के लिए रहीम अपने दोहों द्वारा क्या उपदेश देते हैं ?

बिहारी

बिहारी का जन्म संवत् १६५२ में ग्वालियर में हुआ था। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनके आश्रयदाता जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह थे। जयपुर के राज-दरबार में इनकी बड़ी इज्ज़त थी। महाराज जयसिंह की आज्ञा से बिहारी ने सात सौ दोहों की रचना की जो 'बिहारी सतसई' के नाम से प्रसिद्ध है। यही बिहारी की एक-मात्र कृति है। इसी पर बिहारी यशस्वी हुए हैं। इसके एक-एक दोहे पर महाराज जयसिंह ने पुरस्कार स्वरूप एक-एक अशरफी दी थी। ये दोहे हिन्दी साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। शृंगार-रस के ग्रंथों में 'बिहारी सतसई' का अत्यंत ऊँचा स्थान है। बिहारी ने भक्ति सम्बन्धी दोहे और नीति सम्बन्धी सूक्तियाँ भी लिखी हैं।

बिहारी की भाषा ब्रजभाषा है। 'सतसई' में अलंकारों का खूब प्रयोग हुआ है। वे रीति-कवि हैं।

दोहे

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै, स्याम हरित दुति होय ॥१॥
सीस मुकुट, कटि काछनी, कर-मुरली उर-माल।
यहि बानक मों मन सदा, बसौ बिहारी लाल ॥२॥
या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़े स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय ॥३॥
जिन दिन देखे वै कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब में, अपत कँटीली डार ॥४॥

जपमाला, छापा, तिलक, सरै न एकौ काम।
मन-काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै राम ॥५॥
नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचे ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होइ ॥६॥
यही आस अटक्यौ रहै, अलि गुलाब के मूल।
ह्वैहैं फेरि बसंत ऋतु, इन डारिन वे फूल ॥७॥
दिन दस आदर पाइ कै, करि लै आप बखान।
जौ लगि काग सराध पछ, तौ लगि तव सनमान ॥८॥
कर लै, सूँघि, सराहि कै, सबै रहै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को, गँवई गाहक कौन ? ॥९॥
कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
उहि खाए बौराय जग, इहि पाए बौराय ॥१०॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। बिहारी के दोहों से क्या शिक्षा मिलती है ?
२। इन दोहों की विशेषताएँ बताइए।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

स्व० हरिऔधजी हिन्दी के प्राचीन और नवीन युग के सन्धिकाल के प्रतिनिधि कवि थे। इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में कविता की है। हरिऔधजी का जन्म संवत् १८२२ में निज़ामाबाद, जिला आज़मगढ़ में हुआ था। इन्होंने अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, हिन्दी और बंगला का बड़े ही परिश्रम से अध्ययन किया था। ३३ वर्षों तक इन्होंने सरकारी नौकरी की। इसके साथ-साथ निरंतर काव्य-साधना में भी लगे रहे। इनकी विद्वता से प्रभावित होकर महामना मालवीयजी ने इन्हें अपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी प्राध्यापक के सम्मानित पद पर नियुक्त किया। कई वर्षों तक वे वहाँ हिन्दी-सेवा करते रहे।

खड़ी बोली का सर्वप्रथम प्रबन्ध काव्य 'प्रिय प्रवास' लिखने का श्रेय आपको है। आपने पद्य के अतिरिक्त गद्य की भी रचनाएँ की है। हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास आपने लिखा। इस प्रकार हरिऔधजी अनेक विध विषयों के लेखक माने जाते हैं। 'प्रिय प्रवास' पर इन्हें १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हुआ। संवत् १९०३ में आपका देहावसान हो गया।

प्रमुख रचनाएँ :—पद्य—प्रिय प्रवास, वैदेही वनवास, चुभते चौपदे, चोखे चौपदे, पद्य प्रसून।

गद्य—ठेठ हिन्दी का ठाठ, अधखिला फूल, रस कलश।

पवन-दूत

नाना चिन्ता सहित दिन को राधिका थीं बिताती,
आँखों को थीं सजल रखती उन्मना थीं बिताती ।
शोभावाले जलद-वपु की हो रही चातकी थीं,
उत्कंठा थीं परम प्रबला वेदना वर्द्धिता थीं ।।
बैठी खिन्ना एक दिवस वे गेह में थीं अकेली,
आके आँसू युगल दृग में थे धरा को भिगोते ।
आई धीरे इस सदन में पुष्पसद्गन्ध को ले,
प्रातःवाली सुपवन इसी काल वातायनों से ।।
आके पूरा सदन उसने सौरभीला बनाया,
चाहा सारा कलुष तन का राधिका के मिटाना ।
जो बूँदें थीं सजल दृग के पक्ष में विद्यमाना,
धीरे धीरे क्षिति पर उन्हें सौम्यता से गिराया ।।
श्री राधा को यह पवन की प्यार वाली क्रियायें,
थोड़ी-सी भी न सुखद हुईं हो गयीं वैरिणी-सी ।
भीनी-भीनी महक सिगरी शान्ति उन्मूलती थी,
पीड़ा देती परम चित को वायु की स्निग्धता थी ।।
सन्तापों को विपुल बढ़ता देख के दुःखिता हो,
धीरे बोलीं सदुख उससे श्रीमती राधिका यों ।
"प्यारी प्रातः पवन इतना क्यों मुझे है सताती,
क्या तू भी है कलुषित हुई काल की क्रूरता से ? ।।
मेरे प्यारे नव-जलद-से, कंज-से नेत्रवाले,
जाके आए न मधुवन से औ न भेजा सँदेसा ।

मैं रो-रोके प्रिय-विरह से बावरी हो रही हूँ,
जाके मेरी सब कथा श्याम को तू सुना दे ॥
कालिन्दी के तट पर घने रम्य उद्यानवाला,
ऊँचे-ऊँचे धवल गृह की पंक्तियों से प्रशोभी ।
जो है न्यारा नगर मथुरा, प्राणप्यारा वहीं है,
मेरा सूना सदन तज के तू वहाँ शीघ्र ही जा ॥
जाते-जाते अगर पथ में क्लान्त कोई दिखावे,
तो तू जाके निकट उसकी क्लान्तियों को मिटाना ।
धीरे-धीरे परस करके गात उत्ताप खोना,
सद्गन्धों से श्रमित जन को हर्षितों-सा बनाना ॥
तेरे जैसी मृदु पवन से सर्वथा-शांति-कामी,
कोई रोगी पथिक पथ में जो कहीं भी पड़ा हो ।
तो तू मेरे सकल दुख को भूल के, धीर होके,
खोना सारा कलुष उसका शान्ति सर्वांग होना ॥
जाते-जाते पहुँच मथुरा-धाम में उत्सुका हो,
न्यारी शोभा वर नगर की देखना मुग्ध होना ।
तू होवेगी चकित लख के मेरु-से मन्दिरों को,
आभावाले कलश जिनके दूसरे अर्क-से हैं ॥
तू देखेगी जलद-तन को जा वहीं तद्गता हो,
होंगे लोने नयन उनके ज्योति-उत्कीर्णकारी ।
मुद्रा होगी वर बदन की मूर्ति-सी सौम्यता की,
सीधे-सीधे वचन उनके सिक्त-पीयूष होंगे ॥
नीले कंजों सदृश उनके गात की श्यामता है,
पीला प्यारा बसन कटि में पहनते हैं फबीला ।

छूटी काली अलक मुखकी कान्ति को है बढ़ाती,
सद्वस्त्रों में नवल तन की फूटती-सी प्रभा है ॥
जाते ही छू कमलदल-से पाँव को पूत होना,
काली-काली अलक मृदुता से कपोलों हिलाना।
क्रीड़ायें भी कलित करना ले दुकूलादिकों को,
धीरे-धीरे परस तन को, प्यार की बेलि बोना ॥
कोई प्यारा कुसुम कुम्हला भौन में जो पड़ा हो,
तो प्यारे के चरण पर ला डाल देना उसे तू।
यों देना ऐ पवन! बतला फूल-सी एक बाला,
म्लाना हो हो कमल-पग को चूमना चाहती है ॥
लाके फूले कमल-दल को श्याम के सामने ही,
थोड़ा-थोड़ा विपुल जल में व्यग्र हो हो डुबाना।
यों देना तू भगिनि जतला एक अंभोजनेत्रा,
आँखों को हो विरह-विधुरा वारि में बोरती है ॥
सूखी जाती मलिन लतिका जो धरा में पड़ी हो,
तो तू पाँवों निकट उसको श्याम के ला गिराना।
यों सीधे तू प्रकट करना प्रीति से वंचिता हो,
मेरा होना अति मलिन औ सूखते नित्य जाना ॥
यों प्यारे को विदित करके सर्व मेरी व्यथायें,
धीरे-धीरे वहन करके पाँव की धूलि लाना।
थोड़ी-सी भी चरण-रज जो ला न देगी मुझे तू,
हा! कैसे तो व्यथित चित्त को बोध मैं दे सकूँगी ?॥
जो ला देगी चरण-रज तू तो बड़ा पुण्य लेगी,
पूता हूँगी परम उसको अंग में मैं लगाके।

पोतूँगी जो हृदय-तल में वेदना दूर होगी,
डालूँगी मैं शिर पर उसे आँख में ले मलूँगी ।।
पूरी होवें न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी,
तो तू मेरी विनय इतनी मान ले औ चली जा ।
छूके प्यारे कमल-पग को प्यार के साथ आजा,
जी जाऊँगी हृदय-तल में मैं तुझीको लगाके ।।"

('प्रिय प्रवास' से)

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। राधिका की वेदना को आप अपने शब्दों में लिखिए ।
२। राधिका ने पवन को अपना दूत बनाकर भगवान श्रीकृष्ण के पास क्या संदेशा भेजा ?

मैथिलीशरण गुप्त

श्री मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के कवियों में सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। आप राष्ट्रकवि माने जाते हैं। आपकी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम, राष्ट्र-गौरव और राष्ट्रमहिमा की उज्जवल भावना बड़े वेग से प्रवाहित होती है। गुप्तजी राष्ट्रीयता के प्रतिनिधि कवि हैं। गांधीजी के परम भक्त हैं। ये सादगी से जीवन व्यतीत करते हैं। ये जेल-यात्रा भी कर चुके हैं। इनका जीवन अनुकरणीय है और इनकी कविता प्रेरक। ये नम्रता, सरलता और सादगी के साक्षात् अवतार हैं।

गुप्तजी का जन्म संवत् १९४३ में चिरगाँव, जिला झाँसी में हुआ। गुप्तजी को कविता-प्रेम अपने पिताजी से विरासत में मिला। इन्होंने स्कूली शिक्षा घर पर ही ली। हिन्दी, बंगला, मराठी, संस्कृत आदि भाषाओं का आपने गंभीर अध्ययन किया और पं० महावीर प्रसाद द्विवेदीजी की प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन से कविताएँ लिखने लगे। देखते-ही देखते हिन्दी के यशस्वी कवियों में इनकी गणना होने लगी। अब तक गुप्तजी लगभग ४५ ग्रन्थ लिख चुके हैं। इन्होंने प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य लिखे। 'साकेत' महाकाव्य पर तो हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी प्रदान किया है।

प्रमुख रचनाएँ :—काव्य-साकेत—महाकाव्य। जय भारत, भारत भारती—राष्ट्रीय काव्य ग्रन्थ। जयद्रथ वध, पंचवटी, यशोधरा, द्वापर, नहुष, किसान, आदि खंड काव्य।

भिक्षु

भिक्षु द्वार पर खड़ा हुआ था उत्सुक-सा चुपचाप,
उसको भिक्षा देने आई गृहस्वामिनी आप।
चक्षु चौंधियाये तापस के देख अनोखी कान्ति,
प्रथम तिमिर सा लगा उसे फिर हुई इन्दु की भ्रान्ति।
सिहरे और हो गये तत्क्षण जड़ से उसके अंग,
कर दी उसमें सुगत मूर्ति-सी आज 'मार' ने भंग।
खड़ा रह गया वह वैसा ही भिक्षा लेना भूल,
तब गृहिणी के मुख से मानो झड़े फूटकर फूल।
"यह भोजन अनुकूल न हो तो ले आऊँ कुछ और,
विमुख न जाना पड़े किसी को आकर मेरी पौर।"
फिर रोमांचित हुआ भिक्षु का खड़ा खम्भ सा गात्र,
"क्षुधा कहाँ, जागी है अब तो मुझमें तृष्णा मात्र।
किन्तु न हो वह मृगतृष्णा ही, जिस पर इतना चाव,"
हँस बोली रमणी, "तो जल का है क्या यहाँ अभाव ?"
"सुन्दरि, उसको बुझा सकेगा क्या साधारण नीर ?"
"सुनूँ असाधारण क्या है वह ?" वधू हुई गम्भीर।
"सुतनु, तुम्हारे यौवन का रस पाऊँ तो प्रारब्ध।"
यह कह नर नत नयन और सुन नारी थी निस्तब्ध।
सँभली वह, सम्मुख था उसके दयापात्र वह भ्रष्ट,
"साधु साधु, उसके देने में मुझे कौन सा कष्ट ?
किन्तु तुम्हारा वेष नहीं यह उस रस के उपयुक्त,
सज धज कर पन्द्रह दिन पीछे आ जाना उन्मुक्त।

तुम्हें प्रसाधन सुलभ न होंगे, ले जाओ यह अर्थ,
अर्थपूर्ति के अर्थ, अर्थ ही साधन यहाँ समर्थ।"
देकर उसे निष्क कुछ तरुणी घर में हुई प्रविष्ट,
पर पन्द्रह दिन आते आते रही अस्थि अवशिष्ट।
निकलीं नीली नसें, खुली सो खुली उदर की आँत,
सिकुड़े सूखे अधर किन्तु बढ़ कढ़-से आये दाँत।
उधर क्षौरपूर्वक उबटन कर धोकर तन का मैल,
नई वेषभूषा से भिक्षुक बना छबीला छैल।
आशा के बल से मिलने की काट बड़ी सी बाट,
यथा समय करने आया वह रूप रंग की हाट।
ज्यों त्यों स्वागत कर दासी ने दिखा दिया वह कक्ष-
जहाँ पड़ी थी गृहस्वामिनी ठठरी-सी प्रत्यक्ष।
"स्वागत है,"–कह कर मुस्काई वह अति सारापन्न,
किन्तु देखकर उसे रह गया आगत हत सा सन्न।
"यह क्या?"–इतना ही कह पाया विकल भाव से काँप,
गृहिणी के केशों से उर पर लोट रहे थे साँप।
"यह जो हो, रस किन्तु तुम्हारा रक्षित रहा अशेष,
जाओ, पहले उसे ग्रहण कर सफल करो यह वेष।"
खिंच सा गया साथ दासी के एक ओर वह मंद,
देखे उसने एक ठिकाने कुछ मलघट मुँह बन्द।
"आती है मल गन्ध यहाँ?" वह बोला नाक सिकोड़,
उत्तर दिया दासी ने "हटो न अब मुँह मोड़।
ले लो वह रस आये जिसके अर्थ धर्म को छोड़,
रेचन ले लेकर कर्त्री ने दिया निचोड़ निचोड़।"

चौंक स्वप्न स जागा-सा वह बोला बाहु पसार,
"संघ शरण में भी न मिला जो मिला यहाँ सो सार।"

दोनों ओर प्रेम पलता है

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि पतंग भी जलता है हा! दीपक भी जलता है।

सीस हिला कर दीपक कहता—
'बन्धु, वृथा ही तू क्यों दहता?'
पर पतंग पड़ कर ही रहता! कितनी विह्वलता है?
दोनों ओर प्रेम पलता है।

बच कर हाय! पतंग मरे क्या?
प्रणय छोड़ कर प्राण धरे क्या?
जले नहीं तो मरा करे क्या? क्या यह असफलता है?
दोनों ओर प्रेम पलता है।

कहता है पतंग मन मारे—
'तुम महान, मैं लघु पर प्यारे,
क्या न मरण भी हाथ हमारे? शरण किसे छलना है?'
दोनों ओर प्रेम पलता है।

दीपक के जलने में आली,
फिर भी है जीवन की लाली,
किन्तु पतंग-भाग्य-लिपि काली, किसका वश चलता है?
दोनों ओर प्रेम पलता है।

जगती वणिग्वृत्ति है रखती,
उसे चाहती जिससे चखती ;
काम नहीं, परिणाम निरखती, मुझे यही खलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है।
('साकेत' से)

सखि, वे मुझसे कह कर जाते

सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात ;
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते ?

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहचाना ?
मैंने मुख्य उसीको जाना,
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,—
क्षात्र-धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विफल गर्व अब जागा ?

जिसने अपनाया था, त्यागा ;
रहें स्मरण ही आते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते ?
गये तरस ही खाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से ?—
आज अधिक वे भाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

गये, लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व-अनुपम लावेंगे,
रोते प्राण उन्हें पावेंगे ?
पर क्या गाते गाते ?
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

('यशोधरा' से)

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। 'भिक्षु' कविता का सार अपने शब्दों में लिखकर उसके केन्द्रीय भाव को स्पष्ट कीजिए।
२। उर्मिला की विरह-व्यथा को लिखिए।
३। यशोधरा के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

रामनरेश त्रिपाठी

श्री रामनरेश त्रिपाठी का जन्म संवत् १४९६ में उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले में हुआ। खड़ी-बोली के कवियों में आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। आप हिन्दी के बहुत पुराने कवि हैं। आपके काव्य में भाषा का सौन्दर्य और शैली की सरलता रहती है। आप राष्ट्रीयता और मानवता के पुजारी हैं। राष्ट्रीय आंदोलन में आप जेल जा चुके हैं। राष्ट्रपिता गांधीजी का आप पर अधिक प्रभाव पड़ा है। अतः आपके खंड काव्यों में अहिंसक क्रांति का संदेश सामने आता है। त्रिपाठीजी ने प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य दोनों प्रकार के काव्य सफलतापूर्वक लिखे हैं। इसके अतिरिक्त कविता के विविध प्रकारों के संकलन आपने 'कविता-कौमुदी' नाम से प्रकाशित किए हैं। गुजरात के राष्ट्रीय कवि श्री झवेरचंद मेघाणी की भाँति त्रिपाठीजी ने भी उत्तर भारतीय 'लोक साहित्य' का सर्व प्रथम संकलन एवम् संपादन किया और हिन्दी की बड़ी सेवा की। बाल साहित्य के भी आप सिद्ध-हस्त लेखक हैं। इस प्रकार त्रिपाठीजी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार माने जाते हैं। आज भी आप हिन्दी-साहित्य की सेवा में लगे हुए हैं। ईश्वर आपको दीर्घायु करे।

प्रमुख रचनाएँ :—पथिक, मिलन, स्वप्न, कविता कौमुदी भा. ७।

जीवन संदेश

(१)

जग में सचर अचर जितने हैं सारे कर्म-निरत हैं।
धुन है एक न एक सभी को सबके निश्चित व्रत हैं।

जीवन भर आतप सह वसुधा पर छाया करता है।
तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म में कैसी तत्परता है॥

(२)

सिन्धु-विहङ्ग तरङ्ग-पङ्ख को फड़का कर प्रतिक्षण में।
है निमग्न नित भूमि-अण्ड के सेवन में—रक्षण में।
कोमल मलय-पवन घर-घर में सुरभि बाँट आता है।
सस्य सींचने घन जीवन धारण कर नित जाता है॥

(३)

रवि जग में शोभा सरसाता सोम सुधा बरसाता।
सब हैं लगे कर्म में कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता।
है उद्देश्य नितान्त तुच्छ तृण के भी लघु जीवन का।
उसी पूर्ति में वह करता है अन्त कर्ममय तन का॥

(४)

तुम मनुष्य हो, अमित बुद्धि-बल-विलसित जन्म तुम्हारा।
क्या उद्देश्य-रहित है जग में तुमने कभी विचारा?
बुरा न मानो, एक बार सोचो तुम अपने मन में।
क्या कर्त्तव्य समाप्त कर लिये तुमने निज जीवन में?

(५)

जिस पर गिरकर उदर दरी से तुमने जन्म लिया है।
जिसका खाकर अन्न सुधा-सम नीर पिया है।
जिस पर खड़े हुये, खेले, घर बना वसे, सुख पाये।
जिसका रूप विलोक तुम्हारे दृग, मन, प्राण जुड़ाये॥

(६)

वह सनेह की मूर्ति दयामयि माता-तुल्य मही है।
उसके प्रति कर्त्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है?
हाथ पकड़कर प्रथम जिन्होंने चलना तुम्हें सिखाया।
भाषा सिखा हृदय का अद्भुत रूप स्वरूप दिखाया॥

(७)

जिनकी कठिन कमाई का फल खाकर बड़े हुये हो।
दीर्घ देह ले बाधाओं में निर्भय खड़े हुये हो।
जिनके पैदा किये, बुने वस्त्रों से देह ढके हो।
आतप-वर्षा-शीत-काल में पीड़ित हो न सके हो॥

(८)

क्या उनका उपकार-भार तुम पर लवलेश नहीं है?
उनके प्रति कर्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है?
सतत ज्वलित दुख-दावानल में जग के दारुण रन में।
छोड़ उन्हें कायर बनकर तुम भाग बसे निर्जन में॥

(९)

यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा-स्थल है।
दुख हैं प्रश्न कठोर, देखकर होती बुद्धि विकल है।
किन्तु स्वात्म-बल-विज्ञ सत्पुरुष ठीक पहुँच अटकल से।
हल करते हैं प्रश्न सहज में अविरल मेधा-बल से॥

(१०)

यही लोक-कल्याण-कामना, यही लोक-सेवा है।
यही अमर करनेवाले यश-सुरतरु का मेवा है।
जाओ पुत्र ! जगत में जाओ, व्यर्थ न समय गँवाओ।
सदा लोक-कल्याण-निरत हो जीवन सफल बनाओ॥

(११)

जनता के विश्वास कर्म मन ध्यान श्रवण भाषण में।
वास करो, आदर्श बनो, विजयी हो जीवन-रण में।
अति अशान्त दुखपूर्ण विशृङ्खल क्रान्ति-उपासक जग में।
रखना अपनी आत्म-शक्ति पर दृढ़ निश्चय प्रतिपग में॥

(१२)

जग की विषम आँधियों के झोंके सम्मुख हो सहना।
स्थिर उद्देश्य-समान और विश्वास-सदृश दृढ़ रहना।
जाग्रत नित रहना उदारता-तुल्य असीम हृदय में।
अन्धकार में शान्त चन्द्र-सा, ध्रुव-सा निश्चल भय में॥

(१३)

जग में सुख की प्राप्ति के लिये एक सहायक दुख है।
वही जगाता है सद्गुण को सद्गुण लाता सुख है।
बाधा, बिघ्न, विपत्ति, कठिनता जहाँ-जहाँ सुन पाना।
सबके बीच निडर हो जाना दुखको गले लगाना॥

(१४)

जगन्नियंता की इच्छा से यह संसार बना है।
उसकी ही क्रीड़ा का रूपक यह समस्त रचना है।
है यह कर्म-भूमि जीवों की यहाँ कर्मच्युत होना।
धोखे में पड़ना अलभ्य अवसर से है कर धोना॥

(१५)

पैदा कर जिस देश जाति ने तुमको पाला पोसा।
किये हुये है वह निज हित का तुमसे बड़ा भरोसा।
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्तव्य तुम्हारा।
फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा॥

('पथिक' से)

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। मुनि ने पथिक को क्या जीवन संदेश दिया?
२। हमें मातृभूमि की सेवा क्यों करनी चाहिए?

जयशंकर 'प्रसाद'

श्री जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म संवत् १९४६ में और अवसान संवत् १९९४ में हुआ। इनकी शिक्षा घर पर ही हुई थी। इनके पिताजी अच्छे विद्याप्रेमी और साहित्यिकों की कद्र करनेवाले थे। इनके घर पर साहित्यकारों की सदा बैठक रहती थी। घर के साहित्यिक वातावरण ने प्रसादजी के अज्ञातरूप से कवि-कर्म की ओर प्रवृत्त किया। आरंभ में ये ब्रजभाषा में कविता करने लगे, किन्तु शीघ्र ही खड़ी-बोली की ओर मुड़े। थोड़े ही समय में ये हिन्दी के नवीन कवियों के अग्रगण्य कवि बन गये। ये छायावाद के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं।

प्रसादजी की कविता उच्च कोटि की है। उसमें गंभीर चिंतन तथा महान दर्शन है। सस्ती लोकप्रियता के ये घोर विरोधी थे। जीवन और साहित्य के गहरे अध्ययन के बाद ही इन्होंने कलम उठाई और जो लिखा वह अमर साहित्य बन गया। 'कामायनी' आपका सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है जिस पर सारे हिन्दी जगत को गर्व है।

प्रसादजी केवल कवि ही नहीं हैं, वे नाटककार भी हैं। इसके अतिरिक्त आपने कहानियाँ, उपन्यास और निबन्ध भी लिखे हैं। इस प्रकार प्रसादजी हिन्दी के सर्वतोमुखी प्रतिभा के कलाकार हैं। प्रसादजी को खोकर हिन्दी संसार दरिद्र हो गया है।

प्रमुख रचनाएँ :—काव्य—कानन कुसुम, लहर, झरना, आँसू और कामायनी।

नाटक—ध्रुवस्वामिनी, राज्यश्री, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, एक घूँट आदि।

कहानी संग्रह—आँधी, आकाशदीप।

उपन्यास—तितली, कंकाल।

आँसू

इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?

बस गई एक बस्ती है
स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र-लोक फैला है
जैसे इस नील निलय में।

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग-जल का
यह व्यर्थ साँस चल-चलकर
करती है काम अनिल का।

जो घनी भूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई।

विस्मृति है मादकता है
मूर्च्छना भरी है मन में
कल्पना रही, सपना था
मुरली बजती निर्जन में।

आकाश शून्य फैला है
है शक्ति न और सहारा
अपदार्थ तिरूँगा मैं क्या
हो भी कुछ कूल किनारा।

सूखे सिकना सागर में
यह नैया मेरे मन की
आँसू की धार बहाकर
खे चला प्रेम बेगुन की।

है चंद्र हृदय में बैठा
उस शीतल किरण सहारे
सौन्दर्य सुधा बलिहारी
चुगता चकोर अंगारे।

बलने का सम्बल लेकर
दीपक पतंग से मिलता
जलने की दीन दशा में
वह फूल सदृश हो खिलता।

इस शिथिल आह से खिंचकर
तुम आओगे, — आओगे
इस बढ़ी व्यथा को मेरी
रो रो कर अपनाओगे।

चेतना लहर न उठेगी
जीवन समुद्र थिर होगा

सन्ध्या हो सर्ग प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा।

मानव जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह-मिलन का
दुख-सुख दोनों नाचेंगे
है खेल आँख का मन का।
('आँसू' से)

कामायनी

और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान—
"शक्तिशाली हो, विजयी बनो"
विश्व में गूँज रहा जय गान।

डरो मत अरे अमृत संतान
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि ;
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र
खिची आवेगी सकल समृद्धि।

चेतना का सुन्दर इतिहास
अखिल मानव भावों का सत्य ;
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य
अक्षरों से अंकित हो नित्य।

विधाता की कल्याणी सृष्टि
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण ;
पटें सागर, बिखरे ग्रह -पुंज
और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण ।

उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प
कुचलती रहे खड़ी सानन्द ;
आज से मानवता की कीर्ति
अनिल, भू, जल में रहे न बन्द ।

विश्व की दुर्बलता बल बने,
पराजय का बढ़ता व्यापार ;
हँसाता रहे उसे सविलास
शक्ति का क्रीड़ामय संचार ।

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय ;
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१ । आँसू के केन्द्रीय भाव को स्पष्ट कीजिए ।
२ । कामायनी के उपदेश को आप अपने शब्दो में लिखिए ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

श्री 'निराला' जी का जन्म संवत् १९५३ की वसंत पंचमी को बंगाल में हुआ। आपके पिताजी वैसे तो उत्तर प्रदेश के निवासी थे, पर बंगाल में नौकरी करते थे। अतः निरालाजी का प्रारम्भिक जीवन बंगाल में बीता। वहीं रहकर इन्होंने संस्कृत, बंगला, संगीत और दर्शनशास्त्र का गंभीर अध्ययन किया। इन सबका प्रभाव इनके काव्य पर स्पष्ट है। निरालाजी छायावादी कविता के प्रमुख कवियों में से हैं। ये हिन्दी के युगान्तरकारी कवि माने जाते हैं। प्रसादजी की भाँति निरालाजी की कविता में दार्शनिकता और आध्यात्मिकता का हमें दर्शन होता है। हिन्दी में मुक्त-छंद के प्रणेता आप ही हैं। गीति काव्य की प्रथा को हिन्दी में इन्होंने जन्म दिया। निरालाजी का कविता पर अंग्रेजी रोमान्टिक कवियों और कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की छाप स्पष्टरूप से दिखाई पड़ती है।

निरालाजी ने अपनी कुछ रचनाओं को संगीत के स्वरों में बाँधा है। 'भिक्षुक', 'विधवा', 'तोड़ती पत्थर' आदि आपकी प्रगतिवादी कविताएँ हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानियाँ और निबन्ध भी लिखे हैं। ये पत्रकार भी रह चुके हैं। इन दिनों आप इलाहाबाद में रहते हैं।

प्रमुख रचनाएँ— काव्य—अनामिका, परिमल, गीतिका, आराधना, अर्चना, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, बेला, नये पत्ते आदि।

उपन्यास—अलका, निरूपमा, अप्सरा आदि।

कहानी संग्रह—लिली, सखी आदि।

क्या गाऊँ

क्या गाऊँ ?—माँ ! क्या गाऊँ ?
गूँज रही हैं जहाँ राग—रागिनियाँ
गाती हैं किन्नरियाँ—कितनी परियाँ,
कितनी पंचदिशी कामिनियाँ;
वहाँ एक यह लेकर वीणा दीन,
तंत्री क्षीण—नहीं जिसमें कोई झंकार नवीन,
रुद्ध कंठ का राग अधूरा कैसे तुझे सुनाऊँ ?
माँ ?—क्या गाऊँ ?

छाया है मन्दिर में तेरे यह कितना अनुराग।
चढ़ते हैं चरणों पर कितने फूल
मृदु दल सरस पराग ;
गंध-मोद-मद पीकर मंद समीर
शिथिल चरण जब कभी बढ़ाती आती,
सजे हुए बजते उसके अधीर नुपूर-मंजीर !
कहाँ एक निर्गन्ध कुसम उपहार,
नहीं कहीं जिसके पराग-संचार सुरभि-संसार।
कैसे भला चढ़ाऊँ ?
माँ !—क्या गाऊँ ?

भिक्षुक

वह आता--
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता !

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को--भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली को फैलाता--
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर जाता।

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दयादृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।

भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता–भाग्य विधाता से क्या पाते ?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।

चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। कवि गाने में संकोच का क्यों अनुभव कर रहा है ?
२। भिक्षुक की दशा का आप अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।

सुमित्रानंदन पंत

श्री सुमित्रानंदन पंत का जन्म संवत् १९५८ में अलमोड़ा के कौसानी नामक ग्राम में हुआ। पर्वतीय प्रदेश में जन्म लेने के कारण पंतजी प्रकृति और सौन्दर्य के कवि बने। प्रकृति सदा ही आपके आकर्षण का केन्द्र रही है। पंतजी की प्रारंभिक रचनाओं में प्रकृति-सौन्दर्य अपने समुज्ज्वल रूप में प्रकट हुआ है। आगे चलकर पंतजी पर युग की राजनैतिक तथा आर्थिक समस्याओं ने भी प्रभाव डाला। इसके बाद इन पर महर्षि अरविन्द की दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव पड़ा जो इनकी नवीन रचनाओं में स्पष्टत: दीख पड़ता है।

छायावादी कविता के प्रमुख स्तंभों में एक पंतजी भी हैं। अंग्रेज़ी के रोमान्टिक कवियों की कविता तथा रवीन्द्र-वाणी ने इनपर काफी असर डाला है। फिर भी इनकी कविता में नितांत मौलिकता है। भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से पंतजी नित नवीन हैं। पंतजी सुकुमारता एवं कोमलता के कवि हैं। वे सौन्दर्योपासक हैं। हिन्दी साहित्य को पंतजी जैसी विभूतियों पर सदा ही गर्व रहेगा।

प्रमुख रचनाएँ :—वीणा, पल्लव, गुंजन, ग्रंथि, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णधूलि, स्वर्ण किरण, उत्तरा, युगपथ, अतिमा आदि।

यह धरती कितना देती है—

मैंने छुटपन में छिपकर पैसे बोए थे,
सोचा था, पैसों के प्यारे पेड़ उगेंगे,
रुपयों की कलदार मधुर फ़सलें खनकेंगी,
और फूल फलकर मैं मोटा सेठ बनूँगा।

पर बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा,
बंध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला!
सपने जाने कहाँ मिटे, सब धूल हो गए!
मैं हताश हो बाट जोहता रहा दिनों तक
बाल कल्पना के निज अपलक बिछा पांवड़े।
मैं अबोध था, मैंने ग़लत बीज बोए थे,
ममता को रोपा था, तृष्णा को सींचा था।

अर्धशती हहराती निकल गई है तब से।
कितने ही मधु-पतझर बीत गए अनजाने—
ग्रीष्म तपे, वर्षा झूलीं, शरदें मुसकाईं,
सी-सी कर हेमंत कँपे, तरु झरे, खिले बन,
औ' जब फिर से गाढ़ी ऊदी लालसा लिए
गहरे कजरारे बादल बरसे धरती पर,
मैंने कौतूहलवश, आँगन के कोने की
गीली तह को यों ही उँगली से सहलाकर
बीज सेम के दबा दिए मिट्टी के नीचे!—
रज के अंचल में मणि-माणिक बाँध दिये हों।

मैं फिर भूल गया इस छोटी सी घटना को!
और बात भी क्या थी जिसे याद रखता मन!
किंतु एक दिन, जब मैं संध्या को आँगन में
टहल रहा था—तब सहसा मैंने जो देखा
उससे हर्ष-विमूढ़ हो उठा मैं विस्मय से!

देखा, आँगन के कोने में कई नवागत
छोटी-छोटी छाता ताने खड़े हुए हैं !

छाता कहिए, विजय पताकाएँ जीवन की,
या हथेलियाँ खोले थे नन्ही प्यारी,—
जो भी हो,—वे हरे भरे उल्लास में भरे
पंख मारकर, उड़ने को उत्सुक लगते थे,—
डिम्ब तोड़कर निकले चिड़ियों के बच्चों से !
निर्निमेष क्षणभर में उनको रहा देखता !
सहसा मुझे स्मरण हो आया—कुछ दिन पहले
बीज सेम के रोपे थे मैंने आँगन में !—
और उन्हीं से नन्हें पौधों की यह पलटन
मेरी आँखों के सम्मुख अब खड़ी, गर्व से,
नन्हें नाटे पैर पटक, बढ़ती जाती है।

तब से उनको रहा देखता—धीरे-धीरे
अनगिनती पत्तों से लद भर गईं झाड़ियाँ,
हरे-भरे रँग गए कई मखमली चँदोवे,
बेलें फैल गईं बल खा, आँगन में लहरा !
और सहारा लेकर बाड़े की टट्टी का
हरे-हरे सौ झरने फूट पड़े ऊपर को !

और समय पर उनमें कितनी फलियाँ टूटीं,
कितनी सारी फलियाँ कितनी प्यारी फलियाँ !
पतली चौड़ी फलियाँ—उफ़ उनकी क्या गिनती !

लंबी-लंबी अंगुलियों सी, नन्हीं-नन्हीं
तलवारों सी, पन्ने के प्यारे हारों सी,—
झूठ न समझें, चंद्रकलाओं सी नित बढ़तीं,
सच्चे मोती की लड़ियों सी, ढेर-ढेर खिल,
झुंड-झुंड झिलमिलकर कचपचिया तारों सी !

आः, इतनी फलियाँ टूटीं जाड़ों भर खाईं,
सुबह शाम घर-घर में पकीं पड़ोस पास के
जाने अनजाने सब लोगों में बँटवाईं,—
बंधु-बांधवों, मित्रों, अभ्यागत, मँगतों ने,
जी भर-भर दिन-रात मुहल्ले भर में खाईं
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ !

यह, धरती कितना देती है ! धरती माता
कितना देती है अपने प्यारे पुत्रों को !—
नहीं समझ पाया था मैं उसके महत्व को
बचपन में !—छिः स्वार्थ लोभ वश पैसे बोकर !

रत्न प्रसविनी है बसुधा, अब समझ सका हूँ
इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं,
इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं,
इसमें मानव ममता के दाने बोने हैं—
जिससे उगल सके फिर धूल सुनहली फ़सलें
मानवता की—जीवन श्री से हँसें दिशाएँ
हम जैसा बोयेंगे, वैसा ही पावेंगे ।

वर्षा

झम झम झम झम मेघ बरसते हैं सावन के,
छम छम छम गिरतीं बूँदें तरुओं से छन के।
चम चम बिजली लिपट रही रे उर से घन के
थम थम दिन के तम में सपने जगते मन के !
ऐसे पागल बादल बरसे नहीं धरा पर,
जल फुहार बौछारें धारें गिरतीं झर झर !
आँधी हर हर करती, दल मर्मर, द्रुम चर चर,
दिन रजनी औ' पाख बिना तारे शशि दिनकर !

पंखों के रे फैले फैले ताड़ों के दल
लंबी लंबी अंगुलियां हैं चौड़े करतल !
तड़ तड़ पड़ती धार वारि की उन पर चंचल
टपटप झरतीं करमुख से जल बूँदें झलमल !
नाच रहे पागल हो ताली दे दे चलदल
झूम झूम सिर नीम हिलाते, सुख से विह्वल।
हर सिंगार झरने बेला कलि बढ़तीं प्रतिपल,
हँसमुख हरियाली में खगकुल गाते मंगल।

दादुर टर्-टर् करते झिल्ली बजतीं झन झन,
म्याँउ म्याँउ रे मोर, पीउ पी चातक रे गण।
उड़ते सोन बलाक, आर्द्र सुख से कर क्रंदन,
घुमड़ घुमड़ घिर मेघ गगन में भरते गर्जन,
बुनते वर्षा के प्रिय स्वर उर में सम्मोहन,
प्रणयातुर शतकीट बिहग करते सुख गायन !

मेघों का कोमल तन श्यामल तरुओं से छन,
मन में भू की अलस लालसा भरता गोपन !
रिमझिम रिमझिम क्या कुछ कहते बूँदों के स्वर,
रोम सिहर उठते, छूते वे भीतर अंतर !
धाराओं पर धाराएँ झरतीं धरती पर,
रज के कण-कण में तृण-तृण की पुलकावलि भर !
पकड़ वारि की धार झूलता है मेरा मन
आओ रे सब मुझे घेर कर गाओ सावन !
इंद्रधनुष के झूले में झूलें मिल सब जन
फिर फिर आये जीवन में मनभावन सावन !

चींटी

चींटी को देखा ?
वह सरल, विरल, काली रेखा
तम के तागे सी जो हिलडुल
चलती लघु पद पल-पल मिलजुल
यह है पीपीलिका पाँति।
देखो ना, किस भाँति
काम करती है वह संतत ?
कन-कन कन के चुनती अविरत !
गाय चराती
धूप खिलाती,
बच्चों की निगरानी करती,
लड़ती, अरि से तनिक न डरती !

दल के दल सेना सँवारती,
घर आँगन, जन-पथ बुहारती !
देखो वह वाल्मीकि सुघर,
उसके भीतर है दुर्ग, नगर !
अद्भुत उसकी निर्माण कला,
कोई शिल्पी क्या कहे भला !
उसमें हैं सौध, धाम, जनपथ,
आँगन, गो-गृह, भण्डार अकथ
है डिम्ब सम, वर शिविर रचित,
ड्योढ़ी बहु, राजमार्ग विस्तृत।
चींटी है प्राणी सामाजिक
वह श्रमजीवी, वह सुनागरिक।
देखा चींटी को ?
उसके जी को ?
भूरे बालों की सी कतरन,
छिपा नहीं उसका छोटापन,
वह समस्त पृथ्वी पर निर्भय
विचरण करती श्रम में तन्मय
वह जीवन की चिनगी अक्षय।
वह भी क्या देही है, तिल-सी ?
प्राणों की रिलमिल, झिलमिल-सी ?
दिन-भर में वह मीलों चलती
अथक, कार्य्य से कभी न हटती,
वह भी क्या शरीर से रहती ?

वह कण, अणु परिमाणु ?
चिर सक्रिय वह नहीं स्थाणु !
हा मानव !
देह तुम्हारे ही है रे शव !
तन की चिन्ता में घुल निशदिन
देहमात्र रह गए—दबा तिन।
प्राणि प्रवर
हो गए निछावर
अचिर धूलि पर !!
निद्रा, भय, मैथुनाहार
—ये पशु-लिप्साएँ चार—
हुईं तुम्हें सर्वस्व सार ?
धिक् - मैथुन - आहार यंत्र ?
क्या इन्हीं बालुका-भीतों पर
रचने जाते हो भव्य अमर
तुम जन-समाज का नव्य तन्त्र ?
मिली यही मानव में क्षमता ?
पशु, पक्षी, पुष्पों से समता ?
मानवता पशुता समान है ?
बाह्य नहीं, आन्तरिक साम्य
जीवों से मानव को प्रकाम्य ?
मानव को आदर्श चाहिए,
संस्कृति, आत्मोत्कर्ष चाहिए ;
बाह्य-विधान उसे हैं बन्धन

यदि न साम्य उनमें अन्तरत—
मूल्य न उनका चींटी के सम
वे हैं जड़, चींटी है चेतन।
जीवित चींटी, जीवन-वाहक,
मानव जीवन का वर नायक
वह स्वतंत्र, वह आत्म-विधायक ?

× × ×

पूर्ण तंत्र मानव, वह ईश्वर,
मानव का विधि उसके भीतर ?

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। "हम जैसा बोएंगे, वैसा पावेंगे"—इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
२। "वर्षा" कविता का काव्य-सौन्दर्य अंकित कीजिए।
३। 'चींटी का मध्यवर्ती विचार लिखिए।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का जन्म संवत् १९६४ में उत्तर प्रदेश में हुआ। आप हिन्दी और संस्कृत की विदुषी हैं। संस्कृत में एम० ए० करने के पश्चात् कई वर्षों से प्रयाग में महिला विद्यापीठ की आचार्या के पद पर कार्य कर रही हैं। महादेवीजी के जीवन पर दर्शन और चितन का बड़ा प्रभाव पड़ा है। उसी की छाप आपकी कविताओं पर स्पष्ट है। महादेवीजी छायावादी युग की कवियित्री हैं। महादेवीजी ने दुःख और विरह के गीत लिखे हैं जिनमें हृदय की रम्यता प्रकट होती है। वे आधुनिक युग की रहस्यवादी कविता की प्रमुख लेखिका हैं।

बहुत-से लोग महादेवीजी को आधुनिक युग की मीरा कहते हैं। पर काव्य की पृष्ठभूमि भिन्न होने से यह तुलना उचित नहीं जँचती। हिन्दी साहित्य की कवियित्रियों में आप सर्वोपरि हैं। महादेवीजी ने संस्मरणात्मक लेख भी लिखे हैं जिनमें उनकी सहृदयता, उदारता एवम् स्नेहशीलता प्रकट होती है। आप पत्रकार भी हैं। 'साहित्यकार' की संपादिका हैं।

प्रमुख रचनाएँ —— काव्य——नीहार, रश्मि, नीरजा, दीपशिखा, सान्ध्यगीत, यामा आदि।

संस्मरण——शृंखला की कड़ियाँ, अतीत के चलचित्र और स्मृति की रेखाएँ।

गीत

मधुर मधुर मेरे दीपक जल!
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन !
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल ।
पुलक पुलक मेरे दीपक जल !

सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझसे ज्वाला-कण ;
विश्वशलभ सिर धुन कहता 'मैं
हाय न जल पाया तुझमें मिल' !
सिहर सिहर मेरे दीपक जल !

जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक ;
जलमय सागर का उर जलता ;
विद्युत् ले घिरता है बादल !
विहँस विहँस मेरे दीपक जल !

द्रुम के अंग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयङ्गम ;
वसुधा के जड़ अन्तर में भी ;
बन्दी है तापों की हलचल !
बिखर बिखर मेरे दीपक जल !

मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर ;

मैं अंचल की ओट किये हूँ ;
अपनी मृदु पलकों से चंचल !
सहज सहज मेरे दीपक जल !

सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन
मैं दृग के अक्षय कोषों से—
तुझमें भरती हूँ आँसू-जल !
सजल सजल मेरे दीपक जल !

तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेंगे नव खेल निरन्तर ;
तम के अणु-अणु में विद्युत् सा—
अमिट चित्र अङ्कित करता चल !
सरल सरल मेरे दीपक जल !

तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय ;
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल !

मदिर मदिर मेरे दीपक जल !
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

फूल

मधुरिमा के, मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से छविमान,
आँसुओं में सहमे अभिराम
तारकों से हे मूक अजान !
सीखकर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमल प्राण ?

स्निग्ध रजनी से लेकर हास
रूप से भर कर सारे अङ्ग,
नये पल्लव का घूँघट डाल
अछूता ले अपना मकरन्द
ढूँढ़ पाया कैसे यह देश
स्वर्ग के हे मोहक संदेश ?

रजत किरणों से नैन पखार
अनोखा ले सौरभ का भार,
छलकता लेकर मधु का कोष,
चले आये एकाकी पार
कहो क्या आये हो पथ भूल,
मंजु छोटे मुस्काते फूल ?

उषा के छू आरक्त कपोल
किलक पड़ता तेरा उन्माद,
देख तारों के बुझते प्राण
न जाने क्या आ जाता याद ?

हेरती है सौरभ की हाट
कहो किस निर्मोही की बाट ?
चाँदनी का शृङ्गार समेट
अधखुली आँखों की यह कोर,
लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर ?
जानते हो यह अभिनव प्यार
किसी दिन होगा कारागार ?

कौन है वह सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार ?
तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?
हँसो पहनो काँटों के हार
मधुर भोलेपन के संसार ?

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। 'दीपक' कविता में कवियित्री क्या कहना चाहती है ? स्पष्ट कीजिए।

२। 'फूल' कविता के केन्द्रीय भाव को सविस्तार समझाइए।

सुभद्राकुमारी चौहान

स्व० श्रीमती सुभद्राकुमारीजी का जन्म संवत् १९०४ में इलाहाबाद में हुआ और विवाह मध्यप्रदेश में हुआ। संवत् १९४८ में मोटर दुर्घटना के कारण आपका स्वर्गवास हो गया। सुभद्राजी में बचपन से ही कविता लिखने की रुचि थी। उनके पति ठाकुर लक्ष्मणसिंह के साहित्य-प्रेम ने उसका विकास किया। सुभद्राजी राष्ट्रसेविका भी थीं। महात्मा गाधी के सत्याग्रह आंदोलनों में भाग लेने के कारण आपको जेल-यात्रा भी करनी पड़ी थी। आप मध्यप्रदेश की विधान सभा की सदस्या थीं।

सुभद्राजी की कविता की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरलता है। वीर रस से ओतप्रोत इनकी कई कविताएँ बड़ी ही लोकप्रिय हैं। 'झाँसी की रानी' शीर्षक कविता तो हिन्दी की अमर रचना है। मातृत्व के बड़े ही मार्मिक चित्र आपने अपनी रचनाओं में अंकित किए हैं। बचपन का मनोहारी चित्रण भी उनमें हैं। भाषा की सरलता, शैली की स्वाभाविकता तथा भावना की उच्चता के कारण सुभद्राजी की कविता हिन्दी साहित्य में सदा अविस्मरणीय रहेगी।

प्रमुख रचनाएँ :—काव्य—मुकुल और त्रिधारा।
कहानियाँ—बिखरे मोती, उन्मादिनी आदि।

झाँसी की रानी

(१)

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी,

गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी।।

(२)

कानपुर के नाना की मुँहबोली बहन 'छबीली' थी,
लक्ष्मीबाई नाम पिता की वह सन्तान अकेली थी,
नाना के संग पढ़ती थी वह, नाना के संग खेली थी,
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी, उसकी यही सहेली थी,
वीर शिवाजी की गाथाएँ उसको याद ज़बानी थीं।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी।।

(३)

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसके तलवारों के वार,
नकली युद्ध, व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार,
महाराष्ट्र-कुल-देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी।।

(४)

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ, रानी बन आई लक्ष्मीबाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियाँ छाईं झाँसी में,
सुभट बुन्देले की विरुदावली-सी वह आई झाँसी में,
चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव से मिली भवानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

(५)

उदित हुआ सौभाग्य ! मुदित महलों में उजियाली छाई,
किन्तु काल गति चुपके चुपके काली घटा घेर लाई,
तीर चलानेवाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाईं,
रानी विधवा हुई हाय ! विधि को भी नहीं दया आई,
निःसन्तान मरे राजाजी, रानी शोक समानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

(६)

बुझा दीप झाँसी का, तब डलहौजी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अवसर अच्छा पाया,
फौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य झाँसी आया,

अश्रु-पूर्ण रानी ने देखा झाँसी हुई बिरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

(७)

अनुनय विनय नही सुनता है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था यह जब भारत आया,
डलहौज़ी ने पैर पसारे अब तो पलट गई काया,
राजाओं, नवाबों को भी उसने पैरों ठुकराया,
रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महारानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

(८)

छिनी राजधानी देहली की लखनऊ छीना बातोंबात,
कैद पेशवा था बिठूर में हुआ नागपुर का भी घात,
उदयपुर, तंजोर, सतारा कर्नाटक की कौन बिसात,
जब कि सिंध, पंजाब, ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र-निपात,
बंगाले, मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

(९)

रानी रोईं रनिवासों में बेग़म ग़म से थीं बेज़ार,
उनके कपड़े-गहने बिकते थे कलकत्ते के बाज़ार,

सरेआम नीलाम छापते थे अंग्रेजों के अखबार,
'नागपुर के जेवर ले लो', 'लखनऊ के लो नौलखहार',
यों परदे की इज्ज़त परदेशी के हाथ बिकानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ।।

(१०)

कुटियों में थी विषम वेदना महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान,
नाना धुन्दूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहन छबीली ने रणचंडी का कर दिया प्रकट आह्वान,
हुआ यह प्रारम्भ, उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ।।

(११)

महलों ने दी आग, झोपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतंत्रता की चिनगारी अन्तरतम से आई थी,
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थीं,
मेरठ, कानपुर, पटना ने भी भारी धूम मचाई थी,
जबलपुर, कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ।।

(१२)

इनकी गाथा छोड़, चलें हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेंट बाकर आ पहुँचा आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में,
ज़ख्मी होकर बाकर भागा, उसे अजब हैरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

(१३)

रानी बढ़ी, कालपी आई, कर सौ मील निरन्तर पार,
घोड़ा थककर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार,
यमुना-तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी किया ग्वालियर पर अधिकार,
अंग्रेज़ों के मित्र सिंधिया ने छोड़ी रजधानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

(१४)

विजय मिली पर अंग्रेज़ों की फिर सेना घिर आई थी,
अब के जनरल स्मिथ सम्मुख था उसने मुँह की खाई थी,
काना और मंदरा सखियाँ रानी के संग आई थीं,
युद्ध-क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी,

पर, पीछे ह्यू रोज़ आ गया, हाय घिरी अब रानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

(१५)

तो भी रानी मार-काटकर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था यह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आ गये सवार,
रानी एक शत्रु बहुतेरे होने लगे वार पर वार,
घायल होकर गिरी सिंहनी उसे वीर गति पानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

(१६)

रानी गई सिधार! चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज़, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेईस की थी, मनुज नहीं, अवतारी थी,
हमको जीवित करने आई, बन स्वतंत्रता नारी थी,
दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

(१७)

जाओ रानी, याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनाशी,

होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी,
तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। झाँसीवाली रानी की कहानी आप अपने शब्दों में लिखिए।
२। झाँसीवाली रानी के जीवन-चरित्र से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

सियारामशरण गुप्त

श्री सियारामशरण गुप्तजी मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई हैं। मैथिलीशरणजी की सात्विकता, सरलता और सहृदयता पूरी तरह आपमें भी दीख पड़ती है। ये चिरगाँव झाँसी मे रहते है और अपना पूरा समय साहित्य-साधना में व्यतीत करते है। गाँधीजी की विचारधारा का इनपर विशेष प्रभाव पड़ा है। उदार देशप्रेम, व्यापक राष्ट्रीयता और मानवता की भावना आपकी कविताओं मे दृष्टिगोचर होती है। आपका दृष्टिकोण मनुष्यतावादी है। अंत्यजों और दीन-हीनों के प्रति आपको अधिक सहानुभूति है। गुप्तजी की भावना में एक प्रकार की निर्मलता रहती है जो पाठक के हृदय को सदैव आकर्षित करती है। जीवन और जगत का इन्होंने गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया है। जिस प्रकार ये अपने व्यवहार और वेष में अत्यंत अकृत्रिम रहते हैं, उसी प्रकार इनका साहित्य भी कृत्रिमता से मुक्त है।

कवि होने के साथ-साथ गुप्तजी उपन्यासकार भी है। कहानियाँ और उपन्यास आपने लिखे हैं। आप अच्छे निबंधकार भी है।

प्रमुख रचनाएँ:—काव्य—दैनिकी, मौर्य्य विजय, आर्द्रा, पाथेय, दुर्वादल, विषाद्, आत्मोत्सर्ग, बापू आदि।

कहानी-संग्रह—मानुषी, नारी, गोद, अंतिम आकांक्षा आदि।

निबंध—झूठसच।

सम्मिलित

(१)

"चलो, चलो, इस अमलतास के फूल न तोड़ो";
ठीक नहीं यह, इस रसाल की ममता छोड़ो।"

विस्मित था मैं, भला यहाँ ऐसा है भय क्या,
यह निषेध किसलिए, गूढ़ इसमें आशय क्या ?
मेरा मन तो हरा हो गया, इन्हें निरखकर ;
दोनों का यह रुचिर रूप नयनों से चखकर।
और अधिक के हेतु समुत्सुक हूँ मैं मन में,
ये दोनों जड़ विटपि यहाँ इस विरल विजन में।
भेंट रहे हैं एक दूसरे को खिल खिल कर ;
निज निज सीमा लाँघ सहोदर-से हिल मिल कर।
इसकी शाखा लिये कनक-कुसुमों की डाली ;
उसके कर में मधुर-फलों की भेंट निराली।
पुलकान्दोलित पत्र परस्पर की छाया में ;
छाया भी अविभिन्न परस्पर की माया में।

(२)

किन्तु बताया गया मुझे, मैंने भी जाना,
कटु प्रसंग वह शोचनीय दस बरस पुराना।
"दो स्वजनों में मिले-जुले इस भूमि-खंड पर,
वैर-भाव बढ़ गया, चंड होकर प्रचंड नर।
कहा एक ने—'स्वत्व यहाँ इस पर है मेरा',
कहा अन्य ने—'कौन, कहाँ का तू, क्या तेरा ?'
बढ़ते बढ़ते हुआ क्रोध का रूप भयानक ;
आपस में चल पड़े एक दिन शस्त्र अचानक।
रुधिर गिराते हुए यहीं दोनों वे सोये ;
इसी भूमि पर सहठ प्राण दोनों ने खोये।

उसी बरस नव रुधिर पिये उस क्रूर कलह का,
दीख पड़े अंकुरित यहाँ ये दो द्रुम सहसा।
ठहरो मत इस ठौर यहाँ, ये फूल न तोड़ो,
ठीक नहीं यह, इस रसाल की ममता छोड़ो।
रिपु का इनका प्रेम-मिलन ; शापित यह धरती ;
कलह-प्रेत की मूर्ति यहाँ दिन रात विचरती।

(३)

कलह-प्रेत की मूर्ति !—अरे ओ मानव भोले,
धरती के इस प्रेम-तीर्थ में पावन हो ले।
तू इसको रुधिराक्त करों से आया छूने,
खंड खंड कर इसे काटना चाहा तूने।
पर अब भी यह वही, अखंडित है, अमलिन है ;
चिर-नूतन फल-फूल लिये शोभित प्रतिदिन है।
तुम दो का विष-वैर शान्ति सह पी जाती है ;
नव-नव जीवन-सुधा पिला लौटा देती है।
तुझको फिर फिर यहाँ अहा ! तरु-तरु, तृण-तृण में,
बाँधे है यह तुझे प्रेम-प्रियता के ऋण में।
नहीं भूलता कलह तदपि, -हा ! तू यह कैसा ;
क्या रिपु-रिपु में मंजु-मिलन हो सकता ऐसा ?
मातः वसुधे, स्वजन-स्वजन का वैर-पंक वह,
तेरी सुरसरि-मध्य हुआ है निष्कलंक यह।
तेरे इस युग-विटपि तले मैं निर्भय घूमूँ,
लेकर ये फल-फूल इन्हीं पत्तों-सा झूमूँ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। 'सम्मिलित' कविता में व्यक्त कवि का आशय स्पष्ट कीजिए।
२। कविता की घटना को आप अपने शब्दों में लिखिए।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

श्री नवीनजी राष्ट्रीय चिंतन धारा के अत्यंत प्रभावशाली कवि है। ये साहित्यकार और राजनीतिज्ञ-दोनों एक साथ है। दोनों में इन्हे सम्यक् सफलता प्राप्त हुई है। नवीनजी ओजपूर्ण वक्ता तथा श्रेष्ठ पत्रकार भी है।

कविरूप में नवीनजी सदा प्रगतिशील रहे है। युग की विविध भावनाओं और विभिन्न परिस्थितियों का यथार्थ दर्शन आपकी रचनाओं में परिलक्षित होता है। राष्ट्रीयता, क्रान्ति, विद्रोह आदि के स्वर आपकी कविता में गूँजा करते है। इन दिनों दार्शनिकता का पुट भी दृष्टिगोचर होता है। कुछ रूमानी कविताएँ भी आपने लिखी है। इन दिनों आप दिल्ली में निवास करते है।

प्रमुख रचनाएँ:—अपलक, क्वासि, रश्मिरेखा, कुंकुम आदि।

हिन्दुस्थान हमारा है

कोटि-कोटि कंठों से निकली आज यही स्वर धारा है:
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(१)

जिस दिन सबसे पहले जागे, नवल सृजन के स्वप्न घने,
जिस दिन देश-काल के दो-दो विस्तृत विमल वितान तने,—
जिस क्षण नभ में तारे छिटके, जिस दिन सूरज-चाँद बने,—
तब से है यह देश हमारा, यह अभिमान हमारा है।
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(२)

जब कि घटाओं ने सीखा था सबसे पहले घहराना—
पहले पहले प्रभंजन ने जब सीखा था कुछ हहराना,—
जबकि जलधि सब सीख रहे थे सब से पहले लहराना,—
उसी अनादि-आदि क्षण से यह जन्म-स्थान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(३)

जिस क्षण से जड़ रजकण गतिमय होकर जंगम कहलाए,—
जब विहँसी प्रथमा ऊषा वह, जब कि कमल-दल मुस्काए,—
जब मिट्टी में चेतन चमका, प्राणों के झोंके आए,—
है तब से यह देश हमारा, यह मन-प्राण हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(४)

यहाँ प्रथम मानव ने खोले निंदियारे लोचन अपने !
इसी नभ तले उसने देखे शत-शत नवल सृजन सपने ;
यहाँ उठे 'स्वाहा' के स्वर औ' यहाँ 'स्वधा' के मंत्र बने ;
ऐसा प्यारा देश पुरातन ज्ञान-विधान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(५)

सतलज, व्यास, चिनाब, वितस्ता, रावी, सिंधु तरंगवती,—
यह गंगा माता, यह यमुना गहर, लहर-रस -रंगवती,—

ब्रह्मपुत्र, कृष्णा, कावेरी, वत्सलता-उत्संग - मती,—
इनसे प्लावित देश हमारा, यह रसखान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है ।

(६)

विंध्य, सतपुड़ा, नागा, खसिया, ये दो औघट घाट महा,—
भारत के पूरब-पश्चिम के ये दो भीम कपाट महा,—
तुग शिखर, चिर अटल हिमालय है पर्वत-सम्राट यहाँ ;
यह गिरिवर बन गया युगों से विजय-निशान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है ।

(७)

क्या गणना है कितनी लंबी हम सबकी इतिहास लड़ी ?
हमें गर्व है कि है बहुत ही गहरे अपनी नींव पड़ी ।
हमने बहुत बार सिरजी हैं कई क्रांतियाँ बड़ी-बड़ी,
इतिहासों ने किया सदा ही अतिशय मान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है ।

(८)

है आसन्न भूत अति उज्ज्वल, है अतीत गौरवशाली,
औ' छिटकी है वर्तमान पर बलि के शोणित की लाली,
नव ऊषा-सी विजय हमारी विहँस रही है मतवाली,
हम मानव को मुक्त करेंगे, यही विधान हमारा है ।
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है ।

(९)

गरज उठे चालीस कोटि जन सुन ये वचन उछाह भरे,
काँप उठे प्रतिपक्षी जनगण, उनके अंतस्तल सिहरे,
आज नए युग के नयनों से ज्वलित अग्नि के पुंज झरे ;
कौन सामने आएगा ? यह देश महान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

ओ तुम सब इन्सान उठो !

उठो, उठो, ओ नंगो-भूखो, ओ तुम सब इन्सान उठो !
इस गतिमय मानव समूह के ओ प्रचंड अभिमान उठो !

आज मुक्ति के अरमानों ने मिलकर यों ललकारा है ;
ओ सब सोनेवाले जागो, गूँज रहा नक्कारा है !
कैसी रात ? कहाँ के सपने ? यह नव प्रात पधारा है !
ऐसे हँसते-से प्रभात का तुम करने सम्मान उठो,
उठो, उठो, ओ नंगो-भूखो, ओ तुम सब इन्सान उठो ॥१॥

ले प्राणों के फूल करों में, हिय में अमित उमंग भरे—
कन्धों पर ले विजय-पताका, नयनों में रण-रंग भरे,
नवल प्रात के स्वागत को, तुम चलो वीर निःशंक अरे,
क्या भय ? क्या डर? आज झिझक क्या ओ मानव संतान उठो!
उठो, उठो, ओ नंगो-भूखो, ओ तुम सब इन्सान उठो ॥२॥

सदियों के आदर्श तुम्हारे मूर्त रूप धर आये हैं,
नव समाज के नवल सृजन का नया संदेशा लाये हैं ;
दिशि-दिशि में समता-स्थापन के ये अभिनव स्वर छाये हैं ;

महाक्रांति के नवविधान हित तुम करने बलिदान उठो !
उठो, उठो, ओ नंगो-भूखो, ओ तुम सब इन्सान उठो ।।३।।

अब न आ सके रात भयंकर, ऐसा कुछ गतिचक्र चले,
फिर न अँधेरा छाये जग में ; चाल न कोई वक्र चले,
चमके आज़ादी का सूरज, परवशता का अभ्र टले ;
शोषण के शासन की इति हो, तुम ऐसा प्रण ठान उठो ;
उठो, उठो, ओ नंगो-भूखो, ओ तुम सब इन्सान उठो ।।४।।

सभी ओर तव भुजबल अंकित, पृथिवी, देखो हल देखो ;
दुनिया भरके यन्त्र-तन्त्र में तुम अपना कौशल देखो,
भूमंडल के सिरजन में तुम अपनी चहल-पहल देखो,
ज्योति जगाते, भीति भगाते, ओ तुम शांति निशान उठो;
उठो, उठो, ओ नंगो-भूखो, ओ तुम सब इन्सान उठो ।।५।।

तुमने पीकर गरल, जगत को मधुरामृत का दान दिया,
शीतल हुआ जगत्, जब तुमने प्रलय-अग्नि का पान किया,
मरण-वरण कर तुमने सबको नव जीवन नव प्राण दिया,
बहुत पिया विष, अमृत पिओ अब, त्यागी वीर महान उठो ;
उठो, उठो, ओ नंगो-भूखो, ओ तुम सब इन्सान उठो ।।६।।

सुलगा दो निज अन्तर्ज्वाला, विकट लपट लंबी धधके,
होवे भस्म दासता, शोषण, ऐसी यह होली भभके ;
हो जाओ तुम मुक्त कि विहँसें ये सब तारागण नभ के;
दुर्निवार तुम, सदा मुक्त तुम, करो विजय के गान, उठो ;
उठो, उठो, ओ नंगो-भूखो, ओ तुम सब इन्सान उठो ।।७।।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। भारतवर्ष की गौरव-गाथा को आप अपने शब्दों में लिखिए।
२। भूखे-नंगे, दीन-हीन यदि चाहें तो क्या कर सकते हैं? कवि के आह्वान को स्पष्ट कीजिए।

रामकुमार वर्मा

कबीर की रहस्यमय बानी का गहन अध्ययन और मनन तथा पाश्चात्य रहस्यवाद के परिचय ने श्री रामकुमार वर्माजी को रहस्यवादी कवि बना दिया है। पर रहस्यवादी अस्पष्टता एवम् दुरूहता आपकी कविता में नहीं पाई जाती। गंभीर चिंतन तथा आध्यात्मिक अनुभूति का दर्शन इनकी कविता में पाया जाता है। छायावाद काल के वर्माजी प्रतिष्ठित कवि है। 'चित्ररेखा' नामक इनकी कृति पर देव-पुरस्कार भी प्रदान किया गया है।

वर्माजी नाटककार भी है। हिन्दी-एकांकियों के सफल रूप को प्रस्तुत करनेवाले ये सर्वप्रथम एकांकीकार है। इनके नाटकों की विशेषता उनकी अभिनेयता है। वे हिन्दी रंगमंचों पर सदा सफलतापूर्वक खेले जाते है। इनके एकांकी सामाजिक समस्याओं और ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर लिखे गये है। वर्माजी ने आलोचनात्मक लेख भी प्रकाशित किये है। आप इतिहास लेखक भी है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में आप प्राध्यापक है।

प्रमुख रचनाएँ :-—काव्य—रूपराशि, चन्द्र किरण, चित्ररेखा, हिमहास आदि।

एकांकी—रेशमी टाई, चारुमित्रा, रजतरश्मि, दीपदान आदि।

ये गजरे तारों वाले

इस सोते संसार बीच
जगकर सजकर रजनी बाले!
कहाँ बेचने ले जाती हो
ये गजरे तारों वाले?

मोल करेगा कौन,
सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी।
मत कुम्हलाने दो,
सूनेपन में अपनी निधियाँ न्यारी॥
निर्झर के निर्मल जल में,
ये गजरे हिला-हिला धोना।
लहर हहरकर यदि चूमे तो,
किञ्चित विचलित मत होना॥
होने दो प्रतिबिम्ब विचुम्बित,
लहरों ही में लहराना।
'लो मेरे तारों के गजरे',
निर्झर-स्वर में यह गाना॥
यदि प्रभात तक कोई आकर,
तुम से हाय, न मोल करे।
तो फूलों पर ओस-रूप में,
बिखरा देना सब गजरे॥

चट्टान

दृढ़ खड़ी, कड़ी, टेढ़ी, अखंड,
चट्टान अटल, जड़ सी विषण्ण।
भू-मंडल में निर्भीक वायुमंडल का शून्यान्तर बिगाड़।
झाड़ों के झुंड चपेट भूमि पर बैठी है बनकर पहाड़॥
चुपचाप हजारों लाखों मन का पिंड बनी भूखंड फाड़।
भूकम्पों की दुर्धर्ष शक्तियाँ उसको क्या पाईं उखाड़?

ना, परिवर्तन को रोक,
अमर जीवन का लेकर सबल मंत्र ।
चट्टान खड़ी है, आदि सृष्टि
निर्माण देख, भीषण स्वतंत्र ॥
तेरी अटूट कोरों में मेरे उलझ गये हैं नयन कोर ।
तेरी गुरुता पर चढ़कर नभ तक फैले मेरे नयन छोर ॥
तेरी दृढ़ता में आज सुदृढ़ हो गई भावना की हिलोर ।
तेरी अखंडता, देख देखता हूँ मैं डर दृढ़ता विभोर ॥
अब कहाँ पराजय, कहाँ हीनता,
कहाँ क्लैव्य है कहाँ हार?
ओ शिलाखंड ! मैं कठिन भाग्य
की तरह हो गया दुर्निवार ॥
कोमलता की प्रतिहिंसा ! यह है मेरे सम्मुख शिलाखंड ।
निर्बलता अपनी सफलता में, बनी सुदृढ़ अतिशय प्रचंड ॥
उस पर, अब वर्षा के प्रचंड अभिशाप हिमोपल खंड-खंड ।
बन कर गल जाते हैं, अपने ही दंडों से या रहे दंड ॥
लेकिन यह है चट्टान,
आज अपने कण कण में रही जाग ।
इसमें न एक भी अंश रुदन है,
इसमें है परिव्याप्त आग ॥
क्या इसमें है परिव्याप्त आग ? मुझमें भी जागी यही आग ।
मैं दृढ़ हूँ, सागर उठे, देखना, निकल न आये कहीं झाग ॥
मैं हूँ अखंड, कायरता का मुझमें न कहीं भी लगा दाग ।
आकर चाहे मुझको देखे, भू-मंडल का प्रत्येक भाग ॥

मैं अपने प्रण की प्रकट शक्ति से
चिर वर्षों तक हूँ प्रचंड।
दृढ़ खड़ी, कड़ी, टेढ़ी, अखंड,
चट्टान अटल, जड़-सी विषण्ण ॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। 'ये गजरे तारोंवाले' के काव्य-सौन्दर्य को स्पष्ट कीजिए।
२। चट्टान की क्या महिमा है? वह हमें क्या उपदेश देता है?

हरिवंशराय 'बच्चन'

हिन्दी में उमरखैय्याम की रूबाइयों की प्रेरणा से बच्चनजी ने 'हालावाद' का प्रणयन किया। ये जनरुचि के प्रमुख कवि हैं। उर्दू से प्रभावित होकर इन्होंने 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'प्याला' और 'पीनेवाला' का सृजन कर अत्यंत लोकप्रियता पाई। पर इस ढंग की कविताएँ बच्चनजी तक ही सीमित रहीं। 'मधुशाला' इनकी अत्यंत लोकप्रिय रचना है जिसके अनुकरण का प्रयास अनेक नवयुवकों ने किया। बच्चनजी की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण है उनकी सरल भाषा और प्रभावोत्पादक काव्य शैली। अपने व्यक्तिगत जीवन को काव्य में जिस सचाई के साथ ये उतारते हैं, वैसी सचाई तथा स्वाभाविकता अन्यत्र दुर्लभ है।

बच्चनजी ने कुछ कविताएँ जनजीवन पर भी लिखी हैं। महात्मा गांधी, बंगाल का अकाल, खादी आदि पर आपकी कुछ रचनाएँ विशेष लोकप्रिय हुई हैं। निस्संदेह बच्चनजी जनता के हृदय को सबसे अधिक छूनेवाले हिन्दी कवि हैं। कविता पढ़ने का आपका ढंग इतना आकर्षक है कि आप कवि सम्मेलनों में घंटों जनता को मंत्रमुग्ध रख सकते हैं। बच्चनजी विकासोन्मुख कवि हैं। इन दिनों आप भारत सरकार के वैदेशिक मंत्रालय में हैं।

प्रमुख रचनाएँ :—मधुशाला, मधुबाला, एकान्त-संगीत, निशानिमंत्रण, सतरंगिनी, मिलनयामिनी, धार के इधर उधर आदि।

माँग रहे हैं समाधान

(१)

कब, कहाँ पाप इतने छल-बल से व्याप्त हुआ
निर्दयता से करुणा का स्रोत समाप्त हुआ

किस लोक और किस युग में किसको प्राप्त हुआ
इतनी भीषण पशुता
दानवता का प्रमाण ?
मानवता जैसे फाँक रही है राख-धूर
संस्कृति जैसे कूड़ा-कर्कट का एक धूर
सभ्यता हो गयी है लज्जा से चूर-चूर
हैं छिन्न-भिन्न विक्षुब्ध
काल, जीवन, जहान !

भू माँग रही है इस घटना का समाधान
कण माँग रहा है इस घटना का समाधान
नभ माँग रहा है इस घटना का समाधान
हम माँग रहे हैं इस घटना का समाधान
जन माँग रहे हैं इस घटना का समाधान
मन माँग रहा है इस घटना का समाधान !

(२)

सुकरात संत ने पिया ज़हर का प्याला था
मीरा ने उसको चरणामृत कह ढाला था
ऋषि दयानंद को पड़ा उसी से पाला था
हस्तियाँ उसी पैमाने का
विष पीती हैं।
हज़रत ईसा को चढ़ा दिया था सूली पर
तन था नश्वर, लेकिन आत्मा थी अविनश्वर

वह आज किये घर कितनों के मन के अंदर
वह वर्तमान, सदियों पर
सदियाँ बीती हैं !
हम बापू को रख सकते थे कब तक अगोर,
है जन्म-निधन जीवन डोरी के ओर-छोर,
कितना महान आदर्श हमें वे गये छोड़।
कौमें ऊँचे आदर्शों से
ही जीती हैं !

(३)

जो गोली खाकर मरी वह थी छाया,
है अजर अमर उसके आदर्शों की काया
भारत ने जिनको युग-युग तपकर उपजाया।
थे हाड़-मास के व्यक्ति नहीं
बाबा गांधी !
जो पकड़ गयी वह तो है केवल छाया,
कितने दिल में षड्यंत्री ने आश्रय पाया
कितने कुत्सित भावों ने उसको दी काया
वह एक नहीं है इस पातक का
अपराधी।
मन के अंदर बिठलाकर नफ़रत के मूज़ी
की प्रतिमा, अपने से पूछो, कितनी पूजी ?
जिस भव्य भावना के प्रतीक थे बापूजी
तुमने कितनी वह अपने
जीवन में साधी ?

मेरा संगीत

मैं सदा संसार से लड़ता रहा हूँ
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको,
हूँ नहीं उन धाकड़ों में जो कि अपनी
चाक पर जग को चलाकर हैं बिठाते
धाक अपनी, औ' न उनमें जो जगत के
हुक्मनामों पर ठहरते, पग बढ़ाते ;
या खड़े होकर तमाशा देखते जो
पूछते हैं क्या हुआ उसका नतीजा,
मैं सदा संसार से लड़ता रहा हूँ
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको।

बाँध जो बन्दूक औ' तलवार फिरते
बस उन्हें दुनिया सिपाही मानती है,
किन्तु बेहथियार के जो जंग करते
ढंग उनका वह कहाँ पहचानती है,
युद्ध करते सैंकड़ों यों मौन रहकर
और उनका घाव उनकी पीर, पीड़ा
जानता कोई नहीं उनके अलावा,
कुछ मुखरने को मिला है गीत मुझको
मैं सदा संसार से लड़ता रहा हूँ
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको।

एक दुनिया है हृदय के बीच में भी
जो किसी को भी नहीं देती दिखाई

और इसको जानता कोई नहीं है
जिस तरह मैंने वहाँ पर की लड़ाई
जो वहाँ पहनी फतह की फूल-माला
जो वहाँ गिरकर धरा की धूलि चाटी
है मुझे फूला नहीं देखा विजय ने
औ' पराजय ने नहीं—भय-पीत मुझको।
मैं सदा संसार से लड़ता रहा हूँ
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको।

कौन कहता है कि आधीरात को मैं
बैठ शब्दों के तुकों को जोड़ता हूँ
भावना के भेद को जो हैं दबाए
सत्य में, उन पत्थरों को तोड़ता हूँ,
आग निकले या कि जल की धार निकले
राग मधुमय या करुण चित्कार निकले
चीर कर जो संग की छाती निकलती
है विकलता, बस वही संगीत मुझको;
मैं सदा संसार से लड़ता रहा हूँ
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। 'माँग रहे हैं समाधान'—के केन्द्रीय भाव को स्पष्ट कीजिए।
२। 'मेरा संगीत' में कवि किस आदर्श को प्रस्तुत करता है? लिखिए।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

श्री दिनकरजी की कविता में देशव्यापी जागरण का स्वर है। ये आलोकवादी कवि हैं जो अपनी प्रखर प्रतिभा से अंधकार में भी प्रकाश की किरणें बिखेर कर समाज और मानव-जीवन का कल्याण करते हैं। आपकी कविता जनसाधारण के हृदय में शिव-भावना की सृष्टि करती है। दिनकरजी राष्ट्रीय कवि हैं। 'हिमालय के प्रति' आपकी अत्यन्त प्रसिद्ध लोकप्रिय राष्ट्रीय रचना है। विषय की सरसता और भाषा की सरलता की दृष्टि से दिनकरजी ने अपने काव्य को जनता के हृदय में स्थायी स्थान पाने योग्य बना लिया है। अपनी कुछ कविताओं मे यह कवि विद्रोही भी नजर आता है। वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति और आर्थिक व्यवस्था को देखकर कवि हुंकार कर उठता है। परिवर्तन का आह्वान करता है। दिनकरजी ने प्रबन्ध काव्य भी लिखे हैं।

इन दिनों आपका ध्यान सांस्कृतिक समस्याओं की ओर आकर्षित हुआ है। संस्कृति एवम् इतिहास के गंभीर अध्ययन के फलस्वरूप आपने 'संस्कृति के चार अध्याय' की रचना की जो सर्वत्र सम्माननीय हुआ। आपने साहित्यिक निबन्ध भी लिखे। आप बिहार के सर्वोपरि कवि हैं।

प्रमुख रचनाएँ :—काव्य—रेणुका, हुँकार, रसवंती, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, नील कुसुम आदि।

निबंध—मिट्टी की ओर, अर्द्धनारीश्वर आदि।

हिमालय के प्रति

मेरे नगपति! मेरे विशाल!
साकार, दिव्य गौरव विराट!
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल!

मेरी जननी के हिम-किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

युग-युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त,
युग-युग गर्वोन्नत, नित महान,
निस्सीम व्योम में तान रहे,
युग से किस महिमा का वितान ?
कैसी अखंड यह चिर-समाधि ?
यतिवर ! कैसा यह अमर ध्यान ?
तू महाशून्य में खोज रहा
किस जटिल समस्या का निदान ?
उलझन का कैसा विषम जाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

ओ, मौन तपस्या-लीन यती !
पल-भर को तो कर दृगोन्मेष !
रे ज्वालाओं से दग्ध, विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश !
सुखसिन्धु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र,
गंगा, यमुना की अमिय-धार
जिस पुण्यभूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार !
जिसके द्वारों पर खड़े क्रान्त
सीमापति ! तूने की पुकार ।

'पद-दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार'।
उस पुण्यभूमि पर आज तपी
रे! आन पड़ा संकट कराल;
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे,
डस रहे चतुर्दिक विविध व्याल!
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

कितनी मणियाँ लुट गईं? मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष!
तू ध्यान-मग्न ही रहा इधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश!
ले अँगड़ाई उठ, हिले धरा
कर निज विराट् स्वर में निनाद
तू शैलराट! हुंकार भरे
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद!
तू मौन त्याग, कर सिंहनाद
रे तपी! आज तप का न काल,
नव युग-शंखध्वनि जगा रही
तू जाग, जाग, मेरे विशाल!

मेरी जननी के हिम-किरीट!
मेरे भारत के दिव्य-भाल!
नवयुग-शंखध्वनि जगा रही!
जागो नगपति! जागो विशाल!

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। हिमालय की महिमा को आप अपने शब्दों में लिखिए।
२। हिमालय को कवि क्यों जगाना चाहता है ?

भगवतीचरण वर्मा

श्री भगवतीचरण वर्मा हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभावाले साहित्यकार है। ये कवि हैं, उपन्यासकार है, कहानी लेखक है और कुछ दिनों तक पत्रकार भी रह चुके हैं। सभी क्षेत्रों में आपने पूरी सफलता प्राप्त की है।

वर्माजी की कविता के दो पहलू हैं--एक प्रणय-विह्वल प्राणी की पुकार और दूसरा जनवादी स्वर। अपनी भावनाओं के प्रकाशन में ये सिद्धहस्त कलाकार हैं। कहने की इनकी अपनी शैली है जिस पर इनके व्यक्तित्व की छाप रहती है। 'चित्रलेखा' नामक इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है जो हिन्दी मे अमर कृति मानी जाती है। पाप-पुण्य को लेकर उसमें लेखक ने मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया है। "भैंसागाड़ी" इनकी प्रसिद्ध प्रगतिवादी कविता है। आप हिन्दी के विकासशील लेखक हैं।

प्रमुख रचनाएँ:--काव्य--प्रेम संगीत, मानव, विस्मृति के फूल, मधुकण, त्रिपथगा आदि।

उपन्यास--चित्रलेखा, टेढ़े मेढ़े रास्ते, आखिरी दाव, तीन वर्ष आदि।

कहानी संग्रह--इन्स्टालमेन्ट, दो बाँके, राख और चिनगारी आदि।

कुछ सुन लें, कुछ अपनी कह लें!
जीवन सरिता की लहर-लहर
मिटने को बनती यहाँ प्रिये!
संयोग क्षणिक! फिर क्या जाने
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये?

पल भर तो साथ-साथ बह लें ;
कुछ सुन लें, कुछ अपनी कह लें।
आओ कुछ ले लें औ' दे लें !

हम हैं अजान पथ के राही,
चलना जीवन का सार प्रिये !
पर दुःसह है, अति दुःसह है—
एकाकीपन का भार प्रिये !

पल भर हम-तुम मिल हँस खेलें ;
आओ कुछ ले लें, कुछ दे लें !
हम तुम अपने में लय कर लें !

उल्लास और सुख की निधियाँ,
बस, इतना इनका मोल प्रिये।
करुणा की कुछ नन्हीं बूँदें,
कुछ मृदुल प्यार के बोल प्रिये !

सौरभ से अपना उर भर लें !
हम तुम अपने में लय कर लें !
हम तुम जी भर खुलकर मिल लें !

जग के उपवन की यह मधुश्री,
सुषमा का सरस वसन्त प्रिये !
दो साँसों में बस जाय और
ये साँसें बनें अनन्त प्रिये !

मुरझाना है आओ खिल लें,
हम तुम जी भर खुल कर मिल लें।

दोस्त एक भी नहीं

दोस्त एक भी नहीं जहाँ पर, सौ-सौ दुश्मन जानके,
इस दुनिया में बहुत कठिन है, चलना सीना तान के !

(१)

उखड़े-उखड़े आज दीख रहे हैं, तुमको यार हम,
यह न समझ लेना, जीवन का दाँव गये हैं हार हम !
वही स्वप्न आँखों में, मन में वही अडिग विश्वास है,
खो बैठे हैं किन्तु अचानक, अपना ही आधार हम !
इस दुनिया में जहाँ लोग हैं बड़े आन के, बान के,
हम तो देख रहे हैं तेवर, दो दिन के मेहमान के !

(२)

डगमग अपने चरण स्वयम् ही, हमको इसका ज्ञान है,
निज मस्तक की सीमा से भी अपनी कुछ पहिचान है,
पर सक्षम है कौन यहाँ पर, या किस में सामर्थ्य है ?
हमने तो पाई आँसू से भीगी हर मुसकान है।
जहाँ चुनौती मृत्यु दे रही है जीवन को हर तरफ़ ;
कुछ अजीब-से खेल यहाँ पर, मान और अपमान के !

(३)

यह मानव वैसा ही भोला, वैसा ही कमज़ोर है,
और नियति की अनजानी-सी वैसी कठिन हिलोर है,
किन्तु मिटाने का, मिटने का क्रम है बेहद बढ़ रहा—
और बढ़ गया बेहद सहसा इस दुनिया का शोर है !

हमको लगता आ पहुँचे हैं, हम मरघट के देश में,
लोग जहां पर पागल बनकर आदी हैं विषपान के !

(४)

युगों-युगों से यह मानव है उठता-गिरता चल रहा,
यह प्राणों का दीप यहाँ पर, बुझ-बुझकर फिर जल रहा !
यहाँ चेतना अमर, भावना अमर, अमर विश्वास है,
इसी अमरता की छाया में प्रेम निरन्तर पल रहा !
किन्तु घृणा से दूषित हिंसा से पीड़ित हर साँस है,
और पहने रखे हैं, हम सबने जामे शैतान के !

(५)

यह भी है क्या बात कि इस पर सर पटकें हम व्यर्थ ही,
और देखते रहें दूसरों के हम सदा अनर्थ ही,
एक दर्द जो उठ-उठ पड़ता है दिल में, वह भूल है,
सच तो यह, हम नहीं जानते हार-जीत का अर्थ ही !
वैसे वैभव और सफलता के प्रति हमको मोह है,
पर क्या करें कि हम कायल हैं धर्म और ईमान के !

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। 'कुछ सुन लें, कुछ कह लें'—शीर्षक कविता के आधार पर कवि के चिंतन को स्पष्ट कीजिए।
२। किस परिस्थिति के कारण कवि को यह कहना पड़ा कि 'दोस्त एक भी नहीं' ? सविस्तार उत्तर लिखिए।

उदयशंकर भट्ट

श्री उदयशंकर भट्ट प्रसिद्ध कवि एवम् सफल नाटककार हैं। आधुनिक युग के साहित्यसर्जकों में आपका उच्च स्थान है। पंजाब प्रान्त में साहित्यिक जागृति पैदा करने में आपका बहुत हाथ रहा है। आप जन्मतः गुजराती हैं। इन दिनों 'आकाशवाणी' से संलग्न हैं।

भट्टजी की कविता में भारतीय संस्कृति का गौरवपूर्ण चित्र प्रकट होता है। कुछ कविताएँ माधुर्य भाव को लेकर लिखी गई हैं। वर्तमान राजनैतिक एवम् संघर्षात्मक जीवन का प्रभाव भट्टजी की कई रचनाओं पर पड़ा है। 'युग दीप' कविता वर्त्तमान युग की समस्याओं पर आलोक बिखेरती है। भट्टजी की काव्य-शैली गीति काव्य के नितान्त उपयुक्त है। वह भावपूर्ण है—आडंबर रहित। कुछ रचनाओं में आपने अतुकान्त तथा मुक्तछंद का भी प्रयोग किया है। भट्टजी उपन्यासकार भी हैं और इसीके साथ आपको गीति नाट्यों की रचना में अपूर्व सफलता मिली है।

प्रमुख रचनाएँ:—काव्य—विसर्जन, अमृत और विष, युगदीप, यथार्थ और कल्पना आदि।

नाटक—विश्वामित्र, दो भावनाट्य, कालिदास, एकला चलो रे, सगर विजय, मुक्तिपथ, अंधकार और प्रकाश।

उपन्यास—नये मोड़, वह जो मैंने देखा (दो भाग) आदि।

रात की गोद में

(१)

सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप !
सागर लहरों को सुला गोद, मुख चूम उमंगें रहा माप !
सब मूक नगर, पथ, गली, द्वार,
नर मूक सो रहे—पग पसार,
आँखों में भरकर साध पुण्य,
आँखों में भरकर अघ जघन्य,
उर में जीवन की आशाएँ,
आशाओं की मृदु भाषाएँ,
कुछ शाप और
अपलाप लिये,
वरदान और
अपमान लिये,
अरमान कहीं, अवसान कहीं,
कोने में स्मृतियाँ कहीं मूक,
चंचल आकृतियाँ कहीं मूक,
कुत्ते भी चुप, कौए भी चुप,
तस्कर रखते पग दबा चाप—
सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चंद्र नभ मूक आप !

(२)

मानिनी कहीं हैं रही जाग,
झूठे आँसू, झूठाऽनुराग,

पर उमड़ रहा है प्रेम हृदय,
आंसू से करती हैं अभिनय,
दीपक से चितवन वक्र मिला,
प्रिय का विह्वल मन रहीं हिला,
बेचैन विनय
बेचैन हृदय,
बेचैन प्रान,
बेचैन मन,
दम्पति के हैं तूफान मूक
दम्पति के हैं अरमान मूक
दीपक जल जल
धोता उर-मल
दोनों अपनापन भूल गये
दोनों अपना मन भूल गये ;
दीपक की लौ से मूक मधुर—
दोनों की धड़कन रही काँप !
सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप !

(३)

दिल-जले समेटे हुए राख,
मनचले बटोरे हुए खाक,
कुछ पत्थर-से दिल निर्विकार,
कुछ पानी-से पिघले अपार,

केवल सपनों में प्यार मिला,
जीवन में जिनको भार मिला ;
वे विरह और
वे मिलन लिये,
वे चाह और
वे डाह लिये,
उन्माद कहीं, अवसाद कहीं,
जीवन में जो कुछ कर न सके,
अपने घावों को भर न सके,
दिन से पाकर वे घृणा, व्यंग्य,
निशि में करते चुपचुप विलाप।
सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप !

(४)

शैशव की कहीं कहानी चुप,
उठती-सी कहीं जवानी चुप,
थी आँखों की नादानी चुप,
अल्हड़ मस्ती का पानी चुप,
उठता-उठता-सा रह जाता
चुपके-चुपके सब बह जाता
उद्गार और
अभिसार और
अपनी ऐंठन का
प्यार और

अवशेष मधुर, उठ चले सिहर,
सब अपना नव-पथ भूल गये,
आँखों में लेकर शूल नये,
वे भी करवट ले नचा रहे,
आँखों में अपने नये ताप।
सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप !

(५)

कुछ स्वामी की भिड़कन लेकर,
बेचैनी, ऊबा मन लेकर,
तन भूख, भर्त्सना-धन लेकर,
जर्जर तन-मन
जर्जर जीवन,
विगलित आहें,
ढूँढी चाहें,
प्राणों में हाहाकार भरे,
आँखों का जल उपहार भरे,
सो रहे सहेजे हुए हृदय,
दुनियाँ के अपने सभी पाप—
सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप !

(६)

कुछ सोते दुख की लिये साँस
कुछ सोते कल की लिये आस

क्या जाने कल भी जिन्हें सत्य,
लेने दे जीवन का न पथ्य?
रे, अलग अलग
मानव का जग
सब चुप ही चुप
अंधेरा धुप,
केवल मेरा कवि रहा जाग,
ले हृदय-आग, वाणी-विहाग,
उस महानींद का ताल प्रखर,
हर रात गूँजता रह रह कर,
पीता है निशि के खप्पर में,
जग की साँसों के नाप नाप!
सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप!

(७)

गिरते अचूक हैं बम्ब कहीं,
नर छिन्न भिन्न अवलंब कहीं,
आँखों में कटती दुखद रात,
भय - विगलित जीवन - पारिजात,
इस ओर मृत्यु
उस ओर मृत्यु
झकझोर रही,
सब ओर मृत्यु

कुछ चौंक रह कह वज्र गिरा,
मर रहे अँधेरे से टकरा,
निज साँस तोड़, सब आस छोड़,
नैराश्य निशा से नाश जोड़,
सो रहे समुज्ज्वल जीवन पर,
यम-छाया का कंकाल ढांप !
सुनसान रात, गुपचुप तारे, एकान्त चन्द्र, नभ मूक आप !

धीरे-धीरे युग-दीप जला

अगणित शैशव के हास पिये, यौवन अतृप्त के श्वास पिये,
मलयज दोलित मधु-मास पिये,
पीकर भी हिम-सा स्वयं गला, धीरे-धीरे युग-दीप जला।
किंकिणी रात की पहन हँसा, ऊषा पर मुग्ध न किन्तु रसा,
फूलों के हासों पर न बसा,
दौड़ा न कहीं, रुकता न चला, धीरे-धीरे युग-दीप जला।
संध्या-प्रभात, दिन-रात पिये, अगणित वसंत - बरसात पिये,
अगणित गरमी हिम-पात पिये,
तूफान मिले न हुआ धुँधला, धीरे-धीरे युग-दीप जला।
मानव की स्वार्थ परायणता, मानव की गर्व परायणता,
मानव की बुद्धि परायणता—
का पीकर खून हुआ उजला—धीरे-धीरे युग-दीप जला।
मानव की चर्बी से भरकर, बत्ती लाशों की बना सुघर,
संघर्ष अनन्त निगल खरतर,
भू का आलोकित दीप बला—धीरे-धीरे युग-दीप जला।

शैशव यौवन जलक्षार हुए, अगणित पंथी उस पार हुए,
तेरी गति में न विकार हुए,
अपने को खाकर आप चला——धीरे-धीरे युग-दीप जला।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। रात्रि के वातावरण का वर्णन आप अपने शब्दों में कीजिए
२। युगदीप के प्रज्वलित रखने में किन परिस्थितियों ने योग दिया है

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

श्री अंचलजी मध्यप्रदेश के कवि हैं। इनकी कविता में एक ओर जहाँ सौन्दर्य-भावना प्रकट होती है, दूसरी ओर जनवादी स्वर भी स्पष्टतः सुनाई देता है। दोनों का सम्यक् निर्वाह आपकी रचनाओं में हुआ है। अचलजी गीतकार हैं। बहुत ही उत्तम कोटि के भावगीत आपने रचे हैं जिनमें सूक्ष्मतम कोमल भावों की अभिव्यक्ति हुई है। सामाजिक विषमता के प्रति असंतोष की आग आपकी कुछ रचनाओं में परिलक्षित होती है।

अंचलजी कवि के साथ-साथ कहानीकार और उपन्यास-लेखक भी हैं। आप इन दिनों जबलपुर कालेज में हिन्दी के प्रोफेसर हैं।

प्रमुख रचनाएं:—काव्य—अपराजिता, मधूलिका, किरणवेला, करील, लाल चूनर आदि।
उपन्यास—चढ़ती धूप, उल्का, मरु-प्रदीप आदि।
कहानी संग्रह—तारे, ये वे बहुतेरे आदि।

काँटे कम से कम मत बोओ

यदि फूल नहीं बो सकते,
तो काँटे कम से कम मत बोओ!

(१)

है अगम चेतना की घाटी, कमजोर बड़ा मानव का मन;
ममता की शीतल छाया में होता कटुता का स्वयं शमन!

ज्वालाएँ जब घुल जाती हैं, खुल-खुल जाते हैं मुँदे नयन,
होकर निर्मलता में प्रशांत वहता प्राणों का क्षुब्ध पवन।
संकट में यदि मुस्का न सको, भय से कातर हो मत रोओ !
यदि फूल नहीं बो सकते, तो काँटे कम से कम मत बोओ !

(२)

हर सपने पर विश्वास करो, लो लगा चाँदनी का चन्दन,
मत याद करो, मत सोचो—ज्वाला में कैसे बीता जीवन,
इस दुनिया की है रीति यही—सहता है तन, वहता है मन ;
सुख की अभिमानी मदिरा में जो जाग सका, वह है चेतन !
इसमें तुम जाग नहीं सकते, तो सेज बिछाकर मत सोओ !
यदि फूल नहीं बो सकते, तो काँटे कम से कम मत बोओ !

(३)

पग-पग पर शोर मचाने से मन में संकल्प नहीं जमता,
अनसुना-अचीन्हा, करने से संकट का वेग नहीं कमता,
संशय के सूक्ष्म कुहासों में विश्वास नहीं क्षण-भर रमता,
बादल के घेरों में भी तो जय-घोष न मारुत का थमता।
यदि बढ़ न सको विश्वासों पर, साँसों के मुरदे मत ढोओ ;
यदि फूल नहीं बो सकते, तो काँटे कम से कम मत बोओ !

आज कवि का मूक क्यों स्वर ?

कर रहा चीत्कार जब संसार सारा नष्ट होकर—
आज कवि का मूक क्यों स्वर ?

जल रहो सुख-शान्ति—संयम से मनुज का व्याप्त जीवन,
आ गया जब नाश सन्मुख ले मरण के नग्न बंधन,
आज कवि का मूक क्यों स्वर ?
ले सतत आधार जिसका था खड़ा अपदस्थ मानव,
ढह रहा वह युग विनिर्मित चेतना का स्तंभ ज्यों शव,
आज कवि का मूक क्यों स्वर ?
रुक गया जब आज जगती की प्रगति का स्रोत सारा,
विश्व-चिंतन के प्रवाहों की पड़ी अवरुद्ध धारा ;
आज कवि का मूक क्यों स्वर ?
यह निहत्थों औ' निरीहों का महा बलिदान कातर,
दीर्घ शोषण का चरम बीभत्स यह विद्रूप लखकर
आज कवि का मूक क्यों स्वर ?
सृष्टि के आदिम युगों की मुक्त वर्बरता लजाती,
त्राण संसृति का न दिखता मृत्यु की भरती न छाती ;
आज कवि का मूक क्यों स्वर ?

अभ्यासार्थ प्रश्न

इन कविताओं के आधार पर कवि की विचारधारा को स्पष्ट कीजिए।

नरेन्द्र शर्मा

श्री नरेन्द्र शर्मा नवीन युग के प्रभावशाली कवि हैं। आपके काव्य में अनुभूतियों की गहनता और कल्पना की मौलिकता का दर्शन होता है। आपकी भाषा सरस और प्रवाहपूर्ण है। आपने शृंगार की कविताएँ लिखी हैं और साथ ही राष्ट्रीयता से ओतप्रोत उत्तम रचनाएँ भी की हैं। दोनों में आपकी गति समान है। आपकी कुछ कविताएँ प्रगतिवाद के अंतर्गत आती हैं। आप नवीन कवियों में अग्रगण्य हैं।

प्रमुख रचनाएँ:—प्रवासी के गीत, मिट्टी और फूल, पलाशवन, कामिनी, आदि।

कामना

अब तो ऊब गया मन मेरा पत्थर की दीवारों से,
आँखें ऊब गईं टकरा कर उन निर्जीव कतारों से ?
बड़े नगर हैं, क्षुद्र मनुजता, चेरी बनी अचिरता
की।
शहर नहीं हैं तसवीरें हैं मानव की अस्थिरता की !
टूट चुका नाता हाथों का भावों और विचारों से !
दास अर्थ का बन कर मानव व्यर्थ गँवाता है
जीवन !
रिस रिस कर रस गया रसातल, प्यासी आँखें
सूना मन !

सब कुछ बेच दिया, क्या पाया शहरों के बाजारों से?
दिया बहुत कुछ, पाया किंचित् जहाँ सभी पाने वाले?
नाममात्र के गुणी रहे अब अपने गुण गाने वाले!
ज्ञान मिला विज्ञापन पर चलनेवाले अखबारों से!
कल को आज निगलनेवाला ऋण शहरों का राजा है।
मानव का कर्त्तव्य अजदहे-सी पूँजी का खाजा है!
शासित है, शोषित है मानव करतब के हत्यारों से!
पाँच तत्व के इस पुतले का प्रकृतिदत्त उपहार छिना
जीता है वह पवन, अग्नि, आकाश धरा जलधार बिना,
बंचित है वह अपने संचित जन्मसिद्ध अधिकारों से!
जो न हिलाते हाथ उन्हीं के हाथ लगी जीवन पूँजी!
टक्कर खाते हैं मेहनतकश, शक्कर खाते हैं मूँज़ी!
जान गँवाकर क्या पाया?—पूछो शहरी लाचारों से!
सब कुछ गया, रहा यदि कुछ तो अहंकार अपनेपन का
रुद्धक्रुद्ध हत आहत अहि-सा स्रोत विषैले जीवन का,
मुक्त न होगा मानव यों मानव के अत्याचारों से!
वस्तु बनी थी मानव के हित, यहाँ वस्तु के हित मानव,

वस्तु-यूप पर मानव की बलि देता पूँजी का दानव,
मन पसीजता नहीं दनुज का मानव की चीत्कारों से
मन होता है नयन रमें फिर खुले हुए देहातों में।
चढ़े पर्वतों के शिखरों पर, उतरें मुक्त प्रपातों में,
दौड़े नदियों की द्रोणी में, पूछें राह कछारों से।
रहूँ जहाँ, कुछ हरे खेत हों, बहता निर्मल पानी हो,
इधर-उधर कुछ खेत, बीच में घर हो, घरकी रानी हो!
अटखेली कर सकूँ कभी चढ़ती चंचल मझधारों से!
धरती का कण भर सँवार कर, क्षण भर, सुखी बना पाऊँ!
मूल व्याज के संग चुका कर हँसी खुशी सुख से जाऊँ!
इच्छा की ध्वनि कभी न निकले फिर मन की झंकारों से!

सुख-दुख

जब तक मन में दुर्बलता है,
दुख से दुख, सुख से ममता है!
पर सदा न रहता जग में सुख,
रहता सदा न जीवन में दुख!
छाया-से माया-से दोनों
आने जाने हैं ये सुख-दुख!
मन भरता मन, पर क्या इनसे
आत्मा का अभाव भरता है!

बहुत नाज़ था अपने सुख पर
पर न टिका दो दिन सुख-वैभव,
दुख ? दुख को भी समझा सागर
एक बूँद भी नहीं रहा अब ;
देखा जब दिन-रात चीड़-वन
नित कराह आहें भरता है !
मैंने दुख-कातर हो हो कर
जब जब दर-दर कर फैलाया,
सुख के अभिलाषी मन मेरे
तब तब सदा निरादर पाया ;
ठोकर खा खा कर पाया है
दुख का कारण कायरता है !
सुख भी नश्वर, दुख भी नश्वर
यद्यपि सुख-दुख सब के साथी,
कौन घुले फिर सोच-फ़िकर में
आज घड़ी क्या है, कल क्या थी !
देख तोड़ सीमाएँ अपनी
जोगी नित निर्भय रमता है !
जब तक तन है, आधि-व्याधि हैं ।
जब तक मन, सुख-दुख हैं घेरे ;
तू निर्बल तो क्रीत भृत्य है,
तू चाहे ये तेरे चेरे !
तू इनसे पानी भरवा, भर
ज्ञान-कूप, तुझमें क्षमता है ।

सुख-दुख के पिंजर में बन्दी
कीर धुन रहा सिर बेचारा,
सुख-दुख के दो तीर चीर कर
बहती नित गंगा की धारा,
तेरा जी चाहे जो बन ले,
तू अपना करता-हरता है !

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। 'कामना' कविता के आधार पर शहरों की विकृतियों और देहातों की सुन्दरताओं को अपने शब्दों में लिखिए।
२। 'सुख-दुःख' कविता का भाव शब्द स्पष्ट कीजिए।

स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय'

श्री अज्ञेयजी का पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन है। जन्म मार्च, १९११ में लाहौर में हुआ, बचपन लखनऊ, काश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। शिक्षा मद्रास और लाहौर में पाई। साहित्य के अध्ययन के साथ रसायन शास्त्र का भी आपने अध्ययन किया। कई बार क्रान्ति-कारी प्रवृत्तियों के सिलसिले में ब्रिटिश राज्य में जेल-यात्राएँ की। दो वर्ष नज़रबन्द भी रहे। अब तक आपके जीवन का बहुत बड़ा भाग यात्राओं में बीता है। आपकी रुचि बहुत-सी चीज़ों की ओर है, जैसे—चित्रकला, मूर्तिकला, फोटोग्राफी, लेखन, यात्रा आदि। तीन वर्ष तक आपने फौज की नौकरी भी की।

पिछले कुछ वर्षो से अज्ञेयजी अपना सारा समय साहित्य-क्षेत्र को दे रहे हैं। कविता, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि की रचनाएँ आपने पूर्ण सफलता से की हैं। मानव-मन के कलात्मक विश्लेषण को जो सुन्दर और सफल रूप आपकी रचनाओं में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। अज्ञेयजी कई पत्रिकाओं के सम्पादक रह चुके हैं। आप अनेक भाषाएँ जानते हैं। अंग्रेज़ी में कविताएँ लिखते हैं। नई कविता (प्रयोगवादी ?) के आप प्रणेता माने जाते हैं।

प्रमुख रचनाएँ :—काव्य—भग्नदूत, चिंता, इत्यलम्, हरी घास पर, क्षण भर आदि।

उपन्यास—शेखर एक जीवनी (दो भाग), नदी के द्वीप।

कहानी—विपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, जयदोल आदि।

उड़ चल हारिल

उड़ चल हारिल, लिए हाथ में
यही अकेला ओछा तिनका—
ऊषा जाग उठी प्राची में
कैसी बाट, भरोसा किनका !

शक्ति रहे तेरे हाथों में—
छूट न जाय यह चाह सृजन की
शक्ति रहे तेरे हाथों में
रुक न जाय यह गति जीवन की ?

ऊपर ऊपर ऊपर ऊपर
बढ़ा चीरता चल दिक्मंडल
अनथक पंखों की चोटों से
नभ में एक मचा दे हलचल !

तिनका ? तेरे हाथों में है
अमर ए रचना का साधन—
तिनका ? तेरे पंजों में है
विधना के प्राणों का स्पन्दन !

काँप न यद्यपि दसों दिशा में
तुझे शून्य नभ घेर रहा है
रुक न, यद्यपि उपहास जगत का
तुझको पथ से हेर रहा है ;

तू मिट्टी था, किन्तु आज
मिट्टी को तूने बाँध लिया है

तू था सृष्टि, किन्तु स्रष्टा का
गुर तूने पहचान लिया है!
मिट्टी निश्चय है यथार्थ, पर
क्या जीवन केवल मिट्टी है?
तू मिट्टी, पर मिट्टी से उठने
की इच्छा किसने दी है?
आज उसी ऊर्ध्वंग ज्वाल का
तू है दुर्निवार हरकारा
दृढ़ ध्वजदण्ड बना यह तिनका
सूने पथ का एक सहारा।
मिट्टी से जो छीन लिया है
वह तज देना धर्म नहीं है
जीवन साधन की अवहेला
कर्मवीर का कर्म नहीं है।
तिनका पथ की धूल, स्वयं तू
है अनन्त की पावन धूली—
किन्तु आज तूने नभ पथ में
क्षण में बद्ध अमरता छू ली!
ऊषा जाग उठी प्राची में—
आवाहन यह नूतन दिन का—
उड़ चल, हारिल, लिए हाथ में
एक अकेला पावन तिनका!

अभ्यासार्थ प्रश्न

'उड़ चल हारिल' कविता के भाव को सविस्तार स्पष्ट कीजिए।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

श्री सुमनजी के काव्य में जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण बड़े ही स्वाभाविक रूप में मिलता है। उसमें शृंगार की रसमयी धारा मिलती है और समाज की पतित दशा तथा मानवता का करुण क्रंदन भी। उनकी नवीन रचनाओं में युग की पुकार और नवनिर्माण का संदेश पूर्ण रूप से ध्वनित हो रहा है। सुमनजी का भावुक हृदय कभी जीवन की रंगरेलियों की ओर झाँकता है, तो कभी उनकी बौद्धिक रुझान उन्हें सर्वहारा वर्ग की दयनीय दशा की ओर खींच ले जाती है। इन परिस्थितियों के कारण उनकी रचनाओं में वैविध्य विशेष मात्रा मे प्राप्त होता है।

सुमनजी गीतकार हैं; उनके गीतों में प्रास का सौन्दर्य और शब्दों का सामर्थ्य प्रकट होता है। शैली का प्रवाह और भाषा की सरलता आपकी अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ हैं। सुमनजी की कविता में गेयता होती है। जब ये स्वयम् अपनी कविताएँ सुनाते है, तो जन-समुदाय मंत्र-मुग्ध हो जाता है। रस-विभोर होकर घंटो सुनता रहता है। हिन्दी के नवीन कवियों में सुमनजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रमुख रचनाएँ:—हिल्लोल, जीवन के गान, प्रलय-सृजन, विश्वास बढ़ता ही गया, तब आँखें नहीं भरीं आदि।

वरदान माँगूँगा नहीं !

यह हार एक विराम है
जीवन महा संग्राम है
तिल-तिल मिटूँगा पर दया की भीख मैं लूँगा नहीं
वरदान माँगूँगा नहीं !

स्मृति सुखद प्रहरों के लिये
अपने खण्डहरों के लिये
यह जान लो मैं विश्व की सम्पत्ति चाहूँगा नहीं।
वरदान माँगूँगा नहीं !

क्या हार में क्या जीत में
किंचित नहीं भयभीत मैं
संघर्ष पथ पर जो मिले यह भी सही वह भी सही।
वरदान माँगूँगा नहीं !

लघुता न अब मेरी छुओ
तुम हो महान् बने रहो
अपने हृदय की वेदना मैं व्यर्थ त्यागूँगा नहीं।
वरदान माँगूँगा नहीं !

चाहे हृदय को ताप दो
चाहे मुझे अभिशाप दो
कुछ भी करो कर्त्तव्य-पथ से किन्तु भागूँगा नहीं।
वरदान माँगूँगा नहीं !

मिट्टी की महिमा

(१)

निर्मम कुम्हार की थापी से
कितने रूपों में कुटी-पिटी ;
हर बार बिखेरी गई
किन्तु मिट्टी फिर भी तो नहीं मिटी !

आशा में निश्चल पल जाए, छलना में पड़कर छल जाए ;
सूरज दमके तो तप जाए, रजनी ठुमके तो ढल जाए !
यों तो बच्चों की गुड़िया-सी भोली मिट्टी की हस्ती क्या ?
आँधी आए तो उड़ जाए, पानी बरसे तो गल जाए।
फसलें उगतीं, फसलें कटतीं, लेकिन धरती चिर-उर्वर है ;
सौ बरस बने, सौ बार मिटे, लेकिन मिट्टी अविनश्वर है !
मिट्टी गल जाती पर उसका विश्वास अमर हो जाता है !

(२)

विरचे शिव, विष्णु, विरंचि विपुल
अगणित ब्रह्माण्ड हिलाए हैं ;
पलने में प्रलय झुलाया है,
गोदी में कल्प खिलाए हैं !
रो दे तो पतझड़ आ जाए, हँस दे तो मधु ऋतु छा जाए ;
झूमे तो नन्दन झूम उठे, थिरके तो ताण्डव शरमाए !
यों मदिरालय के प्याले-सी मोहक मिट्टी की मस्ती क्या ?
अधरों को छूकर सकुचाए, ठोकर लग जाए छहराए !
उञ्चास मेघ, उञ्चास पवन, अम्बर-अपनी कर देते सम ;
वर्षा थमती, आँधी थमती, मिट्टी हँसती रहती हरदम !
कोयल उड़ जाती पर उसका निःश्वास अमर हो जाता है !

(३)

मिट्टी की महिमा मिटने में,
मिट-मिट हर बार सँवरती है ;

मिट्टी मिट्टी पर मिटती है,
मिट्टी मिट्टी को रचती है!

मिट्टी में स्वर है, संयम है, होनी-अनहोनी कह जाए,
हँस कर हालाहल पी जाए, छाती पर सब कुछ सह जाए।
यों तो ताशों के महलों-सी मिट्टी की वैभव-बस्ती क्या?
बूड़ा आ जाए बह जाए, भूकम्प उठे तो ढह जाए!
लेकिन मानव का फूल खिला जबसे वाणी का वर पाकर,
विधि का विधान लुट गया, स्वर्ग-अपवर्ग हो गए न्यौछावर!
कवि मिट जाता, लेकिन उसका उच्छ्वास अमर हो जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१। कवि क्यों वरदान माँगना नहीं चाहता?
२। मिट्टी की महिमा को आप अपने शब्दों में लिखिए।

सोहनलाल द्विवेदी

श्री सोहनलाल द्विवेदी हिन्दी के राष्ट्रीय कवि हैं। राष्ट्रीयता से सम्बन्धित कविताएँ लिखनेवालों में आपका स्थान मूर्धन्य है। महात्मा गांधीजी पर आपने कई भावपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित की हैं जो हिन्दी जगत में अत्यंत लोकप्रिय हुई हैं। इसके अतिरिक्त भारत देश, ध्वज, राष्ट्र प्रेम और राष्ट्र नेताओं के विषय की आपकी अनेक उत्तम कोटि की कविताएँ हैं। आपकी अभिव्यक्ति में नितांत स्वाभाविकता और सचाई है। आपकी रचनाएँ ओजपूर्ण रहती हैं। भाषा बिलकुल सरल और आम बोलचाल की होती है। शैली में प्रासादिता और प्रवाह का सौन्दर्य प्रकट होता है। उसमें गति होती है, सप्राणता होती है। अतः वह सदा ही प्रभावोत्पादक होती है। आपने कई कूचगीत लिखे हैं जो प्रासयुक्त होने के कारण सामूहिक रूप से गाये जाते हैं। द्विवेदीजी की कविता हमारी राष्ट्रीयता की परिचायिका है।

प्रमुख रचनाएँ—भैरवी, पूजागीत, सेवाग्राम, प्रभाती, युगाधार कुणाल आदि।

युगावतार गांधी

चल पड़े जिधर दो डग मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर;
जिसके शिर पर निज धरा हाथ
उसके शिर-रक्षक कोटि हाथ,
जिस पर निज मस्तक झुका दिया
झुक गये उसी पर कोटि माथ;

हे कोटिचरण ! हे कोटिबाहु !
हे कोटिरूप ! हे कोटिनाम !
तुम एक मूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि
हे कोटिमूर्ति ! तुमको प्रणाम !
युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख,
तू अचल मेखला बन भू की
खींच ले काल पर अमिट रेख ;
तुम बोल उठे, युग बोल उठा
तुम मौन बने, युग मौन बना ;
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर
युगकर्म जगा, युगधर्म तना ;
युग परिवर्तक, युग - संस्थापक
युग - संचालक, हे युगाधार !
युग - निर्माता, युग - मूर्ति ! तुम्हें
युग-युग तक युग का नमस्कार !
तुम युग-युग की रूढ़ियाँ तोड़
रचते रहते नित नई सृष्टि,
उठती नव जीवन की नींवें,
ले नवचेतन की दिव्य दृष्टि ;
तुम कालचक्र के रक्त सने
दशनों को कर से पकड़ सुदृढ़,
मानव को दानव के मुँह से
ला रहे खींच बाहर बढ़ बढ़,

पिसती कराहती जगती के
प्राणों में भरते अभय दान,
अधमरे देखते हैं तुमको,
किसने आकर यह किया त्राण ?
दृढ़ चरण, सुदृढ़ कर सम्पुट से
तुम कालचक्र की चाल रोक,
नित महाकाल की छाती पर
लिखते करुणा के पुण्य श्लोक !
कँपता असत्य, कँपती मिथ्या,
बर्बरता कँपती है थर थर !
कँपते सिंहासन, राजमुकुट,
कँपते, खिसके आते भू पर ;
हैं अस्त्र-शस्त्र कुण्ठित, लुण्ठित,
सेनायें करतीं गृह-प्रयाण !
रणभेरी तेरी बजती है,
उड़ता है तेरा ध्वज निशान !
हे युग-द्रष्टा, हे युग-स्रष्टा,
पढ़ते कैसा यह मोक्ष-मंत्र ?
इस राजतंत्र के खँडहर में
उगता अभिनव भारत स्वतंत्र !

अभ्यासार्थ प्रश्न

इस कविता के आधार से हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की महानता पर प्रकाश डालिए ।

कठिन शब्दार्थ

कबीर

बिराना—पराया। पारधि—शिकारी। सुबरन—स्वर्ण, सोना। पहार—पहाड़। पाहन—पत्थर। रैन—रात्रि।

सूरदास

रौर—शब्द, ध्वनि। बिधु—चंद्र। अंबुज—कमल। निसि बासर—रातदिन। सीरो—ठंढा। तातो—गर्म। अनत—अन्यत्र। पियासो—प्यासा। छेरी—बकरी। बरबस—जबर्दस्ती। अलि-सुत—भौंरा।

तुलसीदास

पातकी—पापी। नेम—नियम। परुष—कठोर। पथि—मार्ग। दसबदन—रावण। रीते—खाली। सरिस—समान। जीह—जीभ। करतार—ईश्वर। गहहिं—ग्रहण करते हैं। परिहरि—छोड़कर।

मीराबाई

सेज—शैया, बिछौना। गत—स्थिति। बेग—शीघ्र। चाकरी—सेवा। सरसी—सिद्ध हुई। बारी—खिड़की।

रहीम

पान--पानी। केरू--केला। जनमत--पैदा होता है। पंक--कीचड़। उदधि--समुद्र। पियासो--प्यासा। गोय--गुप्त।

बिहारी

नागरि--श्रेष्ठ। दुनि--ज्योति। बानक--मूर्ति, रूप। गति--रहस्य। बहार--बसंत। नल-नीर--नल का पानी। पछ--पक्ष। सराहिकै--प्रशंसा करके। कनक--सोना, धतूरा।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

जलद-वपु--मेघों-सा शरीर। गेह--घर। सौरभीला--सुगंधित। क्षिति--पृथ्वी। सिगरी--समस्त। विपुल--बहुत। कालिन्दी--यमुना। लखके--देखकर। अर्क--सूर्य। पीयूष--अमृत। पूता--पवित्र। पोनूँगी--मलूँगी।

मैथिलीशरण गुप्त

तापस--तपस्वी। मार--कामदेव। पौर--द्वार। गात्र--शरीर। सुतनु--सुन्दर शरीर वाली। कक्ष--कमरा। ठठरी--अस्थिपंजर। दहता--जलता। आली--सखी। उपालम्भ--उलाहना।

रामनरेश त्रिपाठी

निरत--तल्लीन। पत्र--पत्ता। सरसाता--सुन्दर बनाता। सोम--चन्द्र। अमित--अपार। मही--पृथ्वी, धरती। आतप--गर्मी। लवलेश--तनिक, ज़रा। मेधा--बुद्धि।

जयशंकर 'प्रसाद'

निलय—स्थान। अपदार्थ—तुच्छ। सिकता—रेत। वृद्धि—विकास। सदर्प—अभिमान से। अनिल—हवा।

/

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

कामिनियाँ—स्त्रियाँ। समीर—पवन। उपहार—भेंट। टूक—टुकड़े। लकुटिया—लकड़ी। दाता—देनेवाला।

सुमित्रानंदन पंत

बंजर—जो जमीन उपजाऊ न हो। उगला—निकाला। मधु—बसंत। कजरारे—काले। पताका—झंडा। निर्निमेष—एकटक। मँगता—माँगनेवाला। द्रुम—पेड़। पीपीलिका—चींटी। संतत—निरंतर। प्रकाम्य—ज्यादा काम का।

महादेवी वर्मा

आलोकित—प्रकाशित। शलभ—पतंगा। विद्युत—बिजली। तापों—वेदनाओं। सुषमा—सौन्दर्य। अभिराम—सुन्दर। परवार—धोकर। आरक्त—लाल। हाट—दुकान।

सुभद्राकुमारी चौहान

गुमी हुई—खोई हुई। हरबोलों—'हरहर महादेव' का नारा लगानेवाले। गाथा—कथा। खिलवार—खेल। सुभट—वीर, बहादुर। बिसात—शक्ति। निपात—गिरना।

सियारामशरण गुप्त

रसाल——आम। मन हरा हो जाना——खुश होना। रुचिर——सुन्दर। विटपि——पेड़। स्वत्व——अधिकार। रुधिराक्त——खून से लाल।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

विमल——स्वच्छ। वितान——तम्बू। प्रभंजन——हवा। पुरातन——पुराना। सिरजीं——बनाईं। शोणित——खून। उछाह——उत्साह। वक्र——टेढ़ी। अभ्र—बादल। गरल——ज़हर।

रामकुमार वर्मा

न्यारी——अनोखी। क्लैव्य——डरपोकपन। परिव्याप्त——फैली हुई। कड़ी——कठोर। विषण्ण——खिन्न, दुखी।

हरिवंशराय 'बच्चन'

धूर——धूल। घूर——ढेर। जहान——संसार। अगोर——सुरक्षित। अलावा——सिवाय, अतिरिक्त। फतह——विजय।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

नगपति——पहाड़ों में सबसे बड़ा। पुंजीभूत——एकत्रित। व्योम——आकाश। निदान——हल। दृगोन्मेष——आँख खोलना। तपी——तपस्वी। कराल——भीषण। व्याल——साँप। निनाद——ध्वनि, गर्जना।

भगवतीचरण वर्मा

राही—यात्री। लय—लीन। जहाँ—जगत। सीना—छाती। अडिग—दृढ़। मरघट—श्मशान।

उदयशंकर भट्ट

साध—इच्छा। अघ—पाप। जघन्य—घोर। डाह—ईर्ष्या। सुघर—अच्छी-सी। खरतर—ज्यादा तेज़। क्षार हुए—नष्ट हुए।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

कातर—दुःखी। कमता—कम होता। मारुत—पवन। ढोओ—उठाओ। अपदस्थ—दृढ़। विद्रूप—विकृति। संसृति—जगत।

नरेन्द्र शर्मा

चेरी—दासी। अर्थ—सम्पत्ति, धन। ऋण—कर्ज़। पूँजी—पैसा, धन। मेहनतकश—श्रमिक। कछार—तट, किनारा। नाज़—गर्व। कीर—तोता।

स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय'

हलचल—आन्दोलन। उपहास—मज़ाक। हेरना—देखना। गुर—रहस्य। हरकारा—डाकिया। अवहेला—उपेक्षा।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

ताप——कष्ट। छलना——कपट। दमके——चमके। हस्ती——अस्तित्व। अविनश्वर——अमर। विरचे——बनाये। हालाहल——ज़हर।

सोहनलाल द्विवेदी

मग——मार्ग। माथ——सिर। सने——भरे हुए। दशनों को——दाँतों को। बर्बरता——जंगलीपन। अभिनव——नवीन, नया।